सत्य का अन्वेषण

प्रवचन-क्रम

1. सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्...2
2. श्रद्धा नहीं, जिज्ञासा..15
3. मौन का अर्थ..30
4. स्वयं का सत्य...43
5. प्रेम के पंख..54

सत्य का अन्वेषण
पहला प्रवचन

सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य के जीवन में या जगत के अस्तित्व में एक बहुत रहस्यपूर्ण बात है। जीवन को तोड़ने बैठेंगे तो जीवन भी तीन इकाइयों में खंडित हो जाता है। अस्तित्व को खोजने निकलेंगे तो अस्तित्व भी तीन इकाइयों में खंडित हो जाता है। तीन की संख्या बहुत रहस्यपूर्ण है। और जब तक धार्मिक लोग तीन की संख्या की बात करते थे तब तक तो हंसा जा सकता था, लेकिन अब वैज्ञानिक भी तीन के रहस्य को स्वीकार करते हैं। पदार्थ को तोड़ने के बाद अणु के विस्फोट पर, एटामिक एनालिसिस से एक बहुत अदभुत बात पता लगी है, और वह यह है कि अस्तित्व जिस ऊर्जा से निर्मित है उस ऊर्जा के तीन भाग हैं--न्यूट्रान, प्रोटान, इलेक्ट्रान। एक ही विद्युत तीन रूपों में विभाजित होकर सारे जगत का निर्माण करती है।
मैं एक शिव के मंदिर में कुछ दिन पहले गया था और उस मंदिर के पुजारी को मैंने पूछा कि यह शिव के पास जो त्रिशूल रहता है, इसका क्या प्रयोजन है? उस पुजारी ने कहा, शिव के पास त्रिशूल होता ही है, प्रयोजन की कोई बात नहीं है।
लेकिन वह त्रिशूल बहुत पहले कुछ मनुष्यों की सूझ का परिणाम है। वह तीन का सूचक है। हजारों मंदिर इस जगत में हैं और हजारों तरह से तीन के आंकड़े को पकड़ने की कोशिश की गई है। ईसाई अस्तित्व को तीन हिस्सों में तोड़ देते हैं--आत्मा, परमात्मा और होली घोस्ट। और हमने त्रिमूर्तियां देखी हैं--ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
यह बड़े मजे की बात है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये तीनों वही काम करते हैं जो न्यूट्रान, प्रोटान और इलेक्ट्रान करते हैं। ब्रह्मा सृजनात्मक शक्ति हैं, विष्णु संरक्षण शक्ति हैं और शंकर विध्वंस शक्ति हैं।
ये तीन के आंकड़े मनुष्य के जीवन में बहुत-बहुत द्वारों से पहचाने गए हैं। परमात्मा की परम अनुभूति को जिन्होंने जाना है, वे उसे सत्, चित्, आनंद--एक्झिस्टेंस, कांशसनेस और ब्लिस--इन तीन टुकड़ों में बांटते हैं। जिन्होंने मनुष्य जीवन की गहराइयां खोजी हैं, वे सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्-- इन तीन टुकड़ों में मनुष्य के व्यक्तित्व को, उसकी पर्सनैलिटी को बांटते हैं।
यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है कि मनुष्य का पूरा गणित तीन का विस्तार है। शायद ही आपने कभी सोचा हो कि मनुष्य ने नौ आंकड़े, नौ की संख्या तक ही सारी संख्याओं को क्यों सीमित किया। हमारी सारी संख्या नौ का ही विस्तार है। और नौ, तीन में तीन के गुणनफल से उपलब्ध होते हैं। और बड़े आश्चर्य की बात है कि हम नौ के कितने ही गुणनफल करते जाएं, जो भी आंकड़े होंगे, उनका जोड़ सदा नौ होगा। अगर हम नौ का दुगुना करें, अठारह, तो आठ और एक नौ हो जाएगा। अगर तीन गुना करें, सत्ताईस, तो सात और दो नौ हो जाएंगे। हम नौ में अरबों- खरबों का भी जोड़ करें तो भी जो आंकड़े होंगे उनका जोड़ सदा नौ होगा।
शून्य है अस्तित्व, वह पकड़ के बाहर है। और जब अस्तित्व तीन में टूटता
है तो पहली बार पकड़ के भीतर आता है। और जब अस्तित्व तीन से तिगुना हो जाता है तो पहली दफे आंखों के लिए दृश्य होता है। और जब तीन के आंकड़े बढ़ते चले जाते हैं तो अनंत विस्तार हमें दिखाई पड़ने लगता है।
मनुष्य के व्यक्तित्व पर भी ये तीन की परिधियां खयाल करने जैसी हैं। सत्यम मनुष्य की अंतरतम, आंतरिक, इनरमोस्ट केंद्र है। सत्यम का अर्थ है, मनुष्य जैसा है अपने को वैसा जान ले। सत्यम मनुष्य के स्वयं से संबंधित होने की घटना है। सुंदरम सत्यम के बाद की परिधि है। मनुष्य प्रकृति से संबंधित हो जाए, अपने से नहीं। मनुष्य निसर्ग से संबंधित हो जाए, नेचर से संबंध जोड़ ले, तो सुंदरम की घटना--दि ब्यूटीफुल की घटना घटती है। और शिवम मनुष्य की सबसे बाहर की परिधि है। शिवम का मतलब है दूसरे मनुष्यों से

संबंध। शिवम है समाज से संबंध, सुंदरम है प्रकृति से संबंध, सत्यम है स्वयं से संबंध।
हमारे बाहर प्रकृति का एक जगत है। हमारे बाहर मनुष्यों का एक जगत है।
और हम हैं। तो मनुष्य के बिंदु पर अगर हम तीन वर्तुल बनाएं, तीन कनसेंट्रिक सर्किल्स खींचें, तो पहला निकटतम जो सर्किल है वह सत्यम का है; दूसरा जो सर्किल है वह सुंदरम का है, प्रकृति से संबंधित होने का जो जगत है; और तीसरा जो सर्किल है वह शिवम का है, मनुष्य का मनुष्य से संबंधित होने का जो वर्तुल है।
शिवम सबसे ऊपरी व्यवस्था है। इसलिए समाज की दृष्टि में शिवम सबसे महत्वपूर्ण है। इसलिए समाज नीति से ज्यादा धर्म के संबंध में विचार नहीं करता। समाज के लिए बात समाप्त हो जाती है। अगर आप दूसरों के लिए अच्छे हैं तो समाज की बात समाप्त हो जाती है। समाज इससे ज्यादा आपसे मांग नहीं करता। समाज कहता है, दूसरों के साथ व्यवहार अच्छा है तो हमारा काम पूरा हो गया। इसलिए समाज सिर्फ नीति से चल सकता है। समाज को धर्म और दर्शन की कोई आवश्यकता नहीं है। समाज का काम नीति पर पूरा हो जाता है--एक व्यक्ति दूसरे के साथ अच्छा होना चाहिए।

समाज को इसकी चिंता नहीं है कि व्यक्ति प्रकृति के साथ भी अच्छा हो। समाज को इसकी भी चिंता नहीं है कि व्यक्ति अपने साथ भी अच्छा हो। समाज को इसकी चिंता नहीं है कि व्यक्ति अपने भीतर सत्य को उपलब्ध हो। इसकी भी चिंता नहीं है कि चांद-तारों से उसके सौंदर्य के संबंध बनें। उसकी सिर्फ एक चिंता है कि मनुष्यों के साथ उसके संबंध शुभ हों, गुड हों। इसलिए समाज शिव पर सारा जोर डालता है। और जो लोग अपने जीवन में शिव को पूरा कर लेते हैं, समाज उनको महात्मा, साधु का आदर देता है।
लेकिन अस्तित्व की गहराइयों में शिवम सबसे कम गहरी चीज है, सबसे उथली चीज है। इसलिए साधु अक्सर गहरे व्यक्ति नहीं होते। साधुओं से तो कहीं कवि और चित्रकार भी ज्यादा गहरा होता है। साधुओं से तो वह भी ज्यादा गहरा होता है जिसने चांद-तारों से अपना कोई संबंध जोड़ लिया।
असल में, जो चांद-तारों से अपना संबंध जोड़ पाता है वह मनुष्य से तो जोड़
ही लेता है, इसमें तो कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन जो मनुष्य से संबंध जोड़ता है, जरूरी नहीं है कि वह चांद-तारों से भी जोड़ता हो। सुंदरम की जिसकी प्रतीति गहरी है वह शिवम को तो उपलब्ध हो जाता है; जिसने ब्यूटीफुल को खोज लिया है वह गुडनेस को तो उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि गुडनेस अपने आप में बहुत बड़ी से बड़ी सौंदर्य की अनुभूति है। जिसने सुंदर को खोज लिया वह इतनी कुरूपता भी बरदाश्त नहीं कर सकता कि बुरा हो सके। बुरा होना एक कुरूपता है, एक अग्लीनेस है।
लेकिन जिसने शिव को साधा है वह असुंदर हो सकता है। और जिसने शिव को साधा है उसे सौंदर्य में भी चुनाव करना पड़ता है।
श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने एक सुझाव रखा था कि खजुराहो, कोणार्क और पुरी के मंदिर मिट्टी में दबा दिए जाने चाहिए, क्योंकि उन मंदिरों पर जो मूर्तियां हैं वे शुभ नहीं हैं, शिव नहीं हैं। सुंदर हैं, लेकिन गुडनेस से उनका संबंध नहीं मालूम पड़ता है। खजुराहो की दीवाल पर जो मैथुन के चित्र हैं, जो नग्न सुंदर स्त्रियों की प्रतिमाएं हैं, पुरुषोत्तमदास टंडन का खयाल था, इन्हें मिट्टी में दबा देना चाहिए। और गांधी जी भी उनके इस खयाल से राजी हो गए थे। अगर रवींद्रनाथ ने बाधा न डाली होती तो हिंदुस्तान की सबसे कीमती संपत्ति मिट्टी में दब सकती थी। रवींद्रनाथ तो हैरान हो गए यह बात सुन कर कि कोई ऐसा सुझाव दे! लेकिन टंडन शिव के आदमी थे। क्या ठीक है, यह पर्याप्त है। ऐसा सौंदर्य उनके बरदाश्त के बाहर है जिससे किसी के मन में अशुभ पैदा हो सके। वे ऐसी कुरूपता को भी पसंद कर लेंगे जो शुभ की दिशा में ले जाती हो।
इसलिए जिन देशों में साधुओं का बहुत प्रभाव है उन देशों में सौंदर्य
की प्रतिष्ठा कम हो जाती है। हमारा ही ऐसा एक अभागा मुल्क है। इस मुल्क में सौंदर्य की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। सौंदर्य अपमानित है, सौंदर्य

निंदित है। बल्कि काउंट कैसरलेन हिंदुस्तान से जर्मनी वापस लौटा तो उसने वहां जाकर लिखा कि मैं हिंदुस्तान से यह समझ कर आया हूं कि कुरूप होना भी एक आध्यात्मिक योग्यता है, और बीमार होना भी आध्यात्मिक गुण है, और गंदा होना भी साधना की अनिवार्य शर्त है।
जैन साधु स्नान नहीं करेगा। पसीने की जितनी बास आए, उतनी गहरी साधना
का सबूत मिलता है। दातुन नहीं करेगा। मुंह पास ले जाएं तो आपको घबड़ाहट छूटे, तो समझना चाहिए दूसरी तरफ जो आदमी है वह साधु है।
हिंदुस्तान ने शिव की बहुत प्रतिष्ठा की है। और इस प्रतिष्ठा ने सौंदर्य को घातक नुकसान पहुंचाया है। मेरी दृष्टि में, गांधी शिव के अन्यतम प्रतीक हैं।
लेकिन शिव मनुष्य की पहली परिधि है। बहुत गहरी नहीं है, पहली सीढ़ी है। बहुत गहरी नहीं है। जब हम दूसरे व्यक्ति से संबंधित होने का ही केवल खयाल रखते हैं और जब हम यही सोच कर चलते हैं कि दूसरे से हमारे संबंध कैसे हों, और यह कभी नहीं सोचते कि हम कैसे हैं और यह भी कभी नहीं सोचते कि मनुष्यों के अतिरिक्त भी जगत का कोई अस्तित्व है--पत्थर भी हैं, नदियां भी हैं, पहाड़ भी हैं, जब इस विराट जीवन को हम मनुष्य के ही समाज में केंद्रित कर देते हैं, तो जगत और जीवन बहुत संकीर्ण हो जाता है। स्वभावतः जो सिर्फ शिव की ही साधना करेगा, उसके पाखंडी हो जाने का खतरा है। जरूरी नहीं है कि वह पाखंडी हो जाए, लेकिन उसका खतरा है। क्योंकि वह बहुत ऊपर-ऊपर से जीवन को पकड़ने की कोशिश में लगा है। उसने जिंदगी को जड़ों से नहीं पकड़ा है, उसने जिंदगी को फूलों से पकड़ने की कोशिश की है। उसने जिंदगी की बाहरी परिधि को लीपने- पोतने की कोशिश की है। वह चरित्र को ठीक करेगा, वह पानी छान कर पीएगा, वह यह करना ठीक है या नहीं है, ऐसा होना ठीक है या नहीं है, वह यह सब सोचेगा, लेकिन इस सारे सोच में वह जीएगा परिधि पर, गहराई में नहीं जी सकेगा।
गांधी मेरे लिए पहले प्रतीक हैं जो शुभ के श्रेष्ठतम प्रतीक हैं। अगर कोई विकृत हो जाए तो हिटलर जैसा आदमी पैदा होगा और अगर कोई सुकृत हो जाए तो गांधी जैसा आदमी पैदा होगा। ये एक ही परिधि पर खड़े लोग हैं।
यह जान कर आपको हैरानी होगी कि हिटलर सिगरेट नहीं पीता है, हिटलर मांस नहीं खाता है, हिटलर रात नियम से सोता है और सुबह ब्रह्ममुहूर्त में नियम से उठता है। हिटलर अविवाहित रहा है। हिटलर के जीवन में समझा जाए तो साधु के सब लक्षण पूरे हैं, लेकिन हिटलर से ज्यादा असाधु आदमी पृथ्वी पर दूसरा पैदा नहीं हुआ।
यह थोड़ा सोचने जैसा है। अगर हिटलर थोड़ी सिगरेट पी लेता और थोड़ी शराब
पी लेता और थोड़ा मांस खा लेता, तो मैं समझता हूं दुनिया का इतना नुकसान न होता जितना हुआ। अगर वह किसी एकाध स्त्री से प्रेम कर लेता या पड़ोसी की पत्नी से लुक-छिप कर थोड़ी बात कर लेता, तो भी दुनिया का इतना नुकसान न होता जितना हुआ। वह आदमी सब तरफ से बंद हो गया। सब तरफ से जो जबरदस्ती शुभ होने की कोशिश करेगा उसका अशुभ किसी और मार्ग से प्रकट होना शुरू हो जाएगा और बहुत बड़े पैमाने पर प्रकट होगा।
इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग ऊपर से अहिंसा साध लेते हैं, उनकी आंखों, उनकी नाकों, उनके हाथों में सबसे अहिंसा की जगह हिंसा झरने लगती है। जो लोग ब्रह्मचर्य साध लेते हैं, उन्हें चौबीस घंटे सेक्स उनका पीछा करने लगता है। जो लोग किसी दिन उपवास किए हैं, अगर आप में से किसी अभागे ने किसी दिन उपवास किया हो तो उसको पता होगा कि दिन को भोजन के अतिरिक्त और कोई खयाल नहीं आता और रात सिवाय भोजन के कोई सपना नहीं आता।
शुभ को कोई अगर आग्रहपूर्वक जबरदस्ती थोप लेगा, तो शुभ तो नहीं सधेगा, सिर्फ पाखंड होगा और विकृतियां और परवरशंस पैदा होते हैं। लेकिन अगर कोई शुभ को पूरे मननपूर्वक साध ले, तो भी पाखंड तो पैदा नहीं होता, चरित्र पैदा हो जाता है, शुभ चरित्र पैदा हो जाता है, लेकिन होता परिधि का है, बहुत गहरा नहीं होता।
दूसरी परिधि सौंदर्य की है। आचरण शिव की परिधि है और सौंदर्य की हमारी जो अनुभूति है, एस्थेटिक जो सेंस है हमारे भीतर, सुंदर की जो भावदशा है, सुंदर को ग्रहण करने की जो ग्राहकता, सेंसिटिविटी है, वह दूसरी परिधि

है। गांधी को मैं पहली परिधि का प्रतीक पुरुष मानता हूं--सफल प्रतीक पुरुष। हिटलर को मैं पहली परिधि का असफल प्रतीक पुरुष मानता हूं। और रवींद्रनाथ को मैं दूसरी परिधि का सफल प्रतीक पुरुष मानता हूं। उनके जीवन में सौंदर्य सब कुछ है।
सुनी है मैंने एक घटना कि गांधी रवींद्रनाथ के घर मेहमान थे। सांझ घूमने निकलते थे तो उन्होंने कहा कि आप भी चलेंगे? रवींद्रनाथ ने कहा कि रुकें, मैं थोड़ा बाल संवार लूं। गांधी को समझ के बाहर हो गया। स्वाभाविक! इस बुढ़ापे में बाल संवारने की बात बेहूदी मालूम पड़ सकती है, किसी भी साधु को पड़ेगी। लेकिन कोई और होता तो गांधी तत्काल उससे कुछ कहे होते। रवींद्रनाथ से एकदम से कुछ कहना भी कठिन था। चुपचाप खड़े रह गए। उनके कहने में भी विरोध तो था, उनके चुप रहने में भी विरोध था।
रवींद्रनाथ भीतर गए हैं और पांच मिनट बीत गए, नहीं लौटे; दस मिनट बीत गए, नहीं लौटे। गांधी के बरदाश्त के बाहर हो गया। उन्होंने भीतर झांक कर देखा। देखा आदमकद आईने के सामने खड़े हैं, इस बुढ़ापे में सब सफेद हो गए बालों को संवारते हैं और मंत्रमुग्ध हैं ऐसे कि जैसे भूल गए हैं कि घूमने जाना है। गांधी ने कहा, क्या कर रहे हैं आप? इस उम्र में और बालों को इतने संवारने की फिक्र?
रवींद्रनाथ मुड़े। उनका चेहरा जैसे समाधिस्थ था। उन्होंने कहा, जब जवान था, तो बिना संवारे चल जाता था। जब से बूढ़ा हो गया हूं तब से बहुत संवारना पड़ता है।
रास्ते में बात हुई तो रवींद्रनाथ ने कहा कि मैं अक्सर सोचता हूं कि किसी को अगर मैं कुरूप दिखाई पडूं तो मैं उसको दुख दे रहा हूं, और दुख देना हिंसा है। और किसी को मैं सुंदर दिखाई पडूं तो उसे मैं सुख दे रहा हूं, और सुख देना अहिंसा है।
शायद ही कभी किसी ने सोचा हो कि सौंदर्य में अहिंसा भी हो सकती है। रवींद्रनाथ कह रहे हैं, जब मैं किसी को सुंदर दिखाई पड़ता हूं तो उसे सुख दे रहा हूं। और सुख देना अहिंसा है। और जब मैं कुरूप दिखाई पड़ता हूं तो मैं दुख दे रहा हूं। और दुख देना हिंसा है। तो रवींद्रनाथ कह रहे हैं कि मेरी नैतिकता मुझसे कहती है कि मैं सुंदर दिखाई पड़ता रहूं। मरते अंतिम क्षण तक प्रभु से एक ही प्रार्थना है कि मैं कुरूप न हो जाऊं, मैं असुंदर न हो जाऊं।
और यह हैरानी की बात है कि रवींद्रनाथ, जैसे-जैसे बूढ़े होते गए वैसे- वैसे सुंदर होते गए। मरते वक्त बहुत कम लोग इतने सुंदर होते हैं जितने रवींद्रनाथ थे। और रवींद्रनाथ को मरते वक्त देख कर कोई कह सकता था--जैसे हिमालय के शिखर पर बर्फ आ जाए ऐसे उनके चेहरे पर वह जो बुढ़ापे की सफेदी और सफेद बाल आ गए थे उन्होंने जैसे कि श्वेत हिम से उन्हें ढंक दिया हो। वे जैसे गौरीशंकर हो गए थे।
रवींद्रनाथ के मन में सौंदर्य की बड़ी गहरी पकड़ है। इतनी गहरी पकड़ है
कि शुभ को भी वे सुंदर का ही एक रूप समझते हैं, अशुभ को असुंदर का एक रूप समझते हैं। बुरा आदमी इसलिए बुरा नहीं है कि बुरा काम करता है, बुरा आदमी इसलिए बुरा है कि बुरा आदमी कुरूप है। और बुरे आदमी का बुरा काम भी इसीलिए बुरा है कि बुरे काम के परिणाम कुरूप हैं। अग्लीनेस से विरोध है। असाधुता का विरोध नहीं है, विरोध है कुरूपता का। और अगर साधु भी कुरूपता पैदा कर रहा है जीवन में, तो रवींद्रनाथ का विरोध है।
सौंदर्य की जिनके जीवन में थोड़ी सी प्रतीति होगी, वे मनुष्य के जगत के पार जो और बड़ा जगत है, उसमें प्रवेश कर जाते हैं। साधारणतः हम मनुष्य की दुनिया में ही जीते हैं। सच तो यह है कि मनुष्य की दुनिया में भी पूरी तरह नहीं जीते हैं, वहां भी अधूरे जीते हैं। मनुष्य के पार वृक्ष भी हैं, पत्थर भी हैं, पहाड़ भी हैं, चांद-तारे भी हैं, आकाश भी है। यह इतना विराट चारों तरफ फैला है, इससे हमारा कोई संबंध नहीं है।
अभी पीछे लंदन में एक सर्वे किया जा रहा था स्कूल के बच्चों का। तो दस लाख बच्चों ने यह कहा कि उन्होंने गाय नहीं देखी है और सात लाख बच्चों ने कहा कि उन्होंने खेत नहीं देखा है। अब जिन बच्चों ने गाय नहीं देखी, जिन

बच्चों ने खेत नहीं देखा, ये एक अर्थ में जगत से पूरी तरह टूट गए हैं। इनका जगत से कोई संबंध न रहा। इनका संबंध सिर्फ मानवीय जगत से है।
अब आज मैं एक किताब पढ़ रहा था, तो उस किताब के लेखक ने यह सुझाव दिया है
कि चूंकि जमीन छोटी हो गई है और जमीन पर रहने वाले लोग ज्यादा हो गए हैं, इसलिए अब हमें अंडरग्राउंड, जमीन के नीचे रहने का इंतजाम कर लेना चाहिए। और धीरे-धीरे सारी मनुष्यता को जमीन के नीचे निवास करने के लिए राजी कर लेना चाहिए।
वह ठीक कह रहा है। अगर मनुष्यता इसी तरह बढ़ती गई तो आदमी को जमीन के नीचे जाना पड़ेगा। तब शायद हो सकता है, सूरज से भी हमारा कोई संबंध न रहे, चांद-तारों से भी हमारा कोई संबंध न रहे। तब हम प्रकृति से पूरी तरह टूट जाएं और आदमी अकेली सचाई रह जाए या आदमी की बनाई गई चीजें अकेली सचाई रह जाएं--कारखाने, मशीनें, मकान, आदमी--यह आदमी की दुनिया है।
आदमी की दुनिया इस विराट दुनिया का बहुत छोटा हिस्सा है। अगर हम पूरी दुनिया को खयाल में लें तो यह कोई हिस्सा ही नहीं। अगर हम पूरे जगत के विस्तार को सोचें तो आदमी क्या है? वह कुछ भी नहीं है। उसकी यह पृथ्वी क्या है? वह भी कुछ नहीं है। उसका यह सूरज भी क्या है? यह भी कुछ नहीं है। हम जगत के ना-कुछ हिस्से हैं। उस ना-कुछ हिस्से में आदमी की दुनिया ना-कुछ है। और उस ना-कुछ आदमी की दुनिया में दस-पचास आदमियों के बीच एक आदमी संबंधित होकर जी लेता है। स्वभावतः, इसके अस्तित्व में बहुत गहराइयां नहीं पैदा हो सकती हैं।
फिर एक और समझ लेने जैसी बात है कि मनुष्य के साथ हमारे जो भी संबंध हैं वे अपेक्षाओं के, एक्सपेक्टेशंस के संबंध हैं। इसलिए पूर्ण रूप से सुंदर नहीं हो सकते। जहां अपेक्षा है वहां कुरूपता प्रवेश कर जाती है। मनुष्य से हमारे जो संबंध हैं वे मांग और पूर्ति के, डिमांड और सप्लाई के संबंध हैं। नहीं, मालिक के साथ मजदूर का एक डिमांड और सप्लाई का संबंध है, ऐसा मत समझना। पति और पत्नी के बीच जो संबंध है वह भी डिमांड और सप्लाई का है। हम एक-दूसरे के साथ संबंधित हैं कुछ शर्तों के साथ।
जब आदमी सौंदर्य से संबंधित होता है जगत के तो पहली दफे बेशर्त और अनकंडीशनल होता है। और जब हम बेशर्त होते हैं तो संबंधों की गहराई और ही हो जाती है। और जब हम सशर्त होते हैं तब संबंधों की गहराई और हो जाती है-- कोई गहराई नहीं रह जाती। सौंदर्य के संबंध मनुष्य को और गहरे ले जाते हैं। कवि, चित्रकार, नृत्यकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, सौंदर्य के स्रष्टा और सौंदर्य के भाव में जीने वाले लोग हैं।
लेकिन साधुओं के बहुत प्रभाव के कारण काव्य, सौंदर्य और संगीत हमारे जीवन में गहरा प्रवेश नहीं कर पाया। साधुओं को सदा भय रहा है इस बात का कि कहीं सौंदर्य लोगों को अनीति में न ले जाए। जब कि सच्चाई यह है कि अगर सौंदर्य का बोध बढ़ जाए तो ही आदमी वस्तुतः नैतिक हो पाता है, अन्यथा नैतिक नहीं हो पाता। सौंदर्य का जितना गहरा बोध होता है उतना आदमी सेंसिटिव हो जाता है, उतना संवेदनशील हो जाता है। और जितना संवेदनशील हो जाता है उतना अनैतिक होना कठिन हो जाता है। सौंदर्य का बोध अनीति में नहीं ले जाता; सौंदर्य के बोध की कमी ही अनीति में ले जाती है।
अगर एक आदमी एक वेश्या के पास दस रुपये फेंक कर और प्रेम कर सकता है,
तो मैं कहूंगा यह अनैतिक कम, इसमें सौंदर्य की संवेदना बहुत न के बराबर है, इसमें नहीं है। एक आदमी दस रुपये में प्रेम खरीदने की बात सोच सकता है, यह बताती है कि इसके पास एस्थेटिक सेंस जैसी कोई चीज नहीं है। एक आदमी रुपये से प्रेम खरीदने की बात सोच सकता है, यह बताती है कि इसके पास कोई आंतरिक गहराई का कोई अस्तित्व नहीं है।
लेकिन हमें कोई कठिनाई नहीं आती; क्योंकि या तो हम पत्नियां खरीद लेते हैं पूरे जीवन के लिए, चूंकि वह स्थायी सौदा है। इसलिए शायद हम सोचते हों कि वेश्याओं के पास जाने वाले लोग बड़े अनैतिक हैं। लेकिन स्थायी सौदे और अस्थायी सौदे में बहुत फर्क नहीं है। वह सिर्फ लीज्ड टाइम का फर्क है, और कुछ भी नहीं है। लेकिन सौंदर्य का बोध नहीं है। सच तो यह है कि जिस आदमी को सौंदर्य का बोध हो वह शायद किसी को पति और पत्नी न बना पाए। क्योंकि पति

और पत्नी एक कांट्रैक्ट और एक सौदा है। प्रेम सौदा नहीं कर सकता। शायद दुनिया में प्रेम गहरा हो तो परिवार नये ढांचे का निर्मित हो। उसमें पति और पत्नी की मालकियत वाली दुनिया और पजेशन की दुनिया खत्म हो जाए। और उसमें सहज संबंध आएं। जो संबंध भाव के संबंध हैं। जो संबंध दस्तखत किए हुए किसी रजिस्ट्री आफिस के संबंध नहीं हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि रजिस्ट्री आफिस में की गई या बैंड-बाजे बजा कर किसी पुरोहित के सामने की गई। धार्मिक ढंग से की गई रजिस्ट्री, कि सेक्युलर ढंग से की गई, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता है।
सौंदर्य का बोध दूसरी गहरी परिधि है, जो मनुष्य को मनुष्य के जगत से ऊपर उठाती है और विराट से जोड़ती है। रवींद्रनाथ मुझे दूसरे प्रतीक मालूम होते हैं। और यह समझने जैसी बात है कि यह जरूरी नहीं है कि दूसरी परिधि पर जो है वह जरूरी रूप से शिव भी हो, शुभ भी हो; लेकिन बहुत संभावना है उसके शिव और शुभ होने की। पहली परिधि के आदमी को जरूरी नहीं है कि वह सिर्फ शुभ ही हो और सुंदर का उसे बोध न हो। लेकिन उसके सौंदर्य के बोध की कठिनाई ज्यादा है।
तीसरी परिधि है सत्य की, जहां व्यक्ति बाहर से नहीं, स्वयं से, अंतर से संबंधित होता है। इस अंतर-आत्मा से, इस ब्रह्म से, इस आत्मा से, यह जो मैं हूं, कब तक मैं आदमियों से ही संबंधित होता रहूंगा? और कब तक चांद-तारों से ही संबंधित होता रहूंगा? कभी मुझे अपने से भी संबंधित होना है। सत्यम तीसरा बिंदु है, जिसके प्रतीक अरविंद हैं। जिनकी सारी खोज भीतर, और भीतर, और भीतर, यह कौन है, इसे जानने की खोज है। जो व्यक्ति सत्यम को उपलब्ध होता है उसके लिए शिवम और सुंदरम सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। इसलिए अरविंद आचरण के संबंध में बहुत अदभुत हैं। गांधी से पीछे नहीं हैं। और "सावित्री" लिख कर बता सके हैं कि सौंदर्य के बोध में रवींद्र से पीछे नहीं हैं। और अगर अरविंद को कविता के ऊपर नोबल प्राइज नहीं मिली तो उसका कारण यह नहीं है कि अरविंद की कविता रवींद्र से पिछड़ी हुई है; उसका कारण यह है कि नोबल प्राइज बांटने वाले लोगों के दिमाग "सावित्री" को समझने में असमर्थ हैं। और अरविंद अंतर-आत्मा की खोज में भी गए हैं, स्वयं की खोज में भी गए हैं। अरविंद सत्यम के प्रतीक हैं।
ये तीन व्यक्ति मैं मौजूदा जिंदगी से ले रहा हूं ताकि बात हमें साफ हो सके। लेकिन तीनों में से कोई भी मुक्त नहीं हो सकता है--न गांधी, न रवींद्र, न अरविंद। क्योंकि ये तीनों अस्तित्व की बातें हैं। मुक्ति इसके पार शुरू होती है। अगर कोई आचरण पर रुक गया तो भी बंध जाता है, अगर कोई सौंदर्य पर रुक गया तो भी बंध जाता है, अगर कोई स्वयं पर रुक गया तो भी बंध जाता है। पहला बंधन जरा दूर है, दूसरा बंधन जरा निकट है, तीसरा बंधन अति निकट है। लेकिन तीनों ही बंधन हैं। अगर कोई व्यक्ति स्वयं के भीतर ही डूब गया तो भी रुक गया। क्योंकि स्वयं के पार भी सर्व की सत्ता है। वह जो यह "मैं" हूं, इसके पार भी "ना-मैं", वह जो नहीं हूं मैं, उसकी भी सत्ता है। प्रकृति की नहीं, वह कॉस्मिक एक्झिस्टेंस की है, जहां से प्रकृति पैदा होती है और जहां प्रकृति लीन होती है। चरित्र पर रुक जाऊं तो सामाजिक अंश बन कर रह जाता हूं, प्रकृति पर रुक जाऊं तो प्रकृति का अंश बन कर रह जाता हूं, अपने पर रुक जाऊं तो कांशसनेस, चेतना का अंश होकर रह जाता हूं। लेकिन सर्वात्मा का अंश नहीं हो पाता हूं।
इन तीनों के पार जो होता है वही मुक्ति में प्रवेश करता है, वही फ्रीडम में, टोटल फ्रीडम में प्रवेश करता है। सत्य, शिव और सुंदर, तीनों मनुष्य की भाव-दशाएं हैं। और जब तीनों भाव-दशाओं के कोई पार होता है तो निर्भाव हो जाता है। तब वह बियांड माइंड हो जाता है। तब वह मन के पार चला जाता है। समाधि तीनों के पार हो जाने का नाम है।
लेकिन तीनों के पार होने के दो ढंग हैं। एक ढंग के प्रतीक रमण हैं और दूसरे ढंग के प्रतीक कृष्णमूर्ति हैं। तीनों के पार होने का एक ढंग तो यह है कि तीनों शांत हो जाएं। तीनों में से कोई भी न रह जाए, तीनों बिदा हो जाएं। जैसे लहरें सो गईं सागर में, कोई लहर न बची--न शिवम की, न सुंदरम की, न सत्यम की। तीनों शांत हो गईं। और रमण निष्क्रिय समाधि को उपलब्ध होते

हैं। तीनों शांत हो गए हैं। न सत्यम की कोई पकड़ है, न शिवम की कोई पकड़ है, न सुंदरम की कोई पकड़ है। तीनों की लहर खो गई है। यह निष्क्रिय समाधि है। रमण से यात्रा शुरू होती है मुक्ति की।
कृष्णमूर्ति ठीक विपरीत हैं रमण से। चौथी जगह खड़े हैं, लेकिन विपरीत हैं। और रमण में तीनों सो गए हैं, कृष्णमूर्ति में तीनों एक से सजग हैं। तीनों समतुल हैं। तीनों की शक्ति बराबर एक है और तीनों एक से प्रकट हैं। तो अरविंद को तो कविता लिखनी पड़ती है; कृष्णमूर्ति जो बोल रहे हैं, वह कविता है; अलग से लिखनी नहीं पड़ती। कृष्णमूर्ति का होना ही कविता है। अरविंद के लिए तो कोई क्षण काव्य का होगा, कृष्णमूर्ति के लिए पूरा अस्तित्व काव्य है। गांधी को शिवम साधना पड़ता होगा, कृष्णमूर्ति के लिए वह साधना नहीं पड़ता, वह उनकी छाया है। गांधी को अहिंसा लानी पड़ती है, कृष्णमूर्ति के लिए अहिंसा आती है। अरविंद को सत्य को खोजना पड़ता है, कृष्णमूर्ति को सत्य ही खोजता हुआ आ गया है। तीनों समतुल हैं, एक सी शक्ति के हैं।
लेकिन रमण और कृष्णमूर्ति में क्या फर्क है? दोनों एक ही द्वार पर खड़े हैं। एक निष्क्रिय समाधि को उपलब्ध हुआ है, क्योंकि तीनों के पार चला गया है। एक सक्रिय समाधि को उपलब्ध हुआ है, क्योंकि तीनों के समन्वय को, सिंथेसिस को उपलब्ध हो गया है। दोनों में थोड़ा सा फर्क है। अनुभव का कोई फर्क नहीं है, लेकिन व्यक्तित्व का बुनियादी फर्क है। और रमण की समाधि ऐसे है जैसे बूंद सागर में गिर जाए--बुंद समानी समुंद में। कृष्णमूर्ति की समाधि ऐसी है जैसे बूंद में सागर गिर जाए--समुंद समाना बुंद में। परिणाम में तो एक ही घटना घट जाएगी। लेकिन दोनों के व्यक्तित्व भिन्न हैं।
और कृष्णमूर्ति और रमण मिनिमम क्वालिफिकेशन हैं अध्यात्म के द्वार पर, न्यूनतम योग्यताएं हैं। अध्यात्म के द्वार पर न्यूनतम योग्यता कम से कम इतनी चाहिए जितनी रमण की या कृष्णमूर्ति की। लेकिन यह न्यूनतम योग्यता है, मिनिमम क्वालिफिकेशन है। और रमण और कृष्णमूर्ति से भी महत्तर व्यक्तित्व हैं, जैसे बुद्ध, महावीर या क्राइस्ट। बुद्ध और महावीर और क्राइस्ट में रमण और कृष्णमूर्ति संयुक्त रूप से प्रकट हुए हैं, अलग-अलग नहीं हैं। निष्क्रिय और सक्रिय समाधि एक साथ घटित हुई है। वह जो पाजिटिव और निगेटिव है, वह एक साथ घटित हुआ है। महावीर में, बुद्ध में या क्राइस्ट में निषेध और विधेय दोनों एक साथ घटित हुए हैं। वे दोनों एक साथ हैं-- कृष्णमूर्ति भी और रमण भी। महावीर जब बोल रहे हैं तब वे कृष्णमूर्ति जैसी भाषा बोलते हैं। और महावीर जब चुप हैं तब वे रमण जैसे चुप होते हैं। रमण मौन हैं, साइलेंट हैं। कृष्णमूर्ति मुखर हैं, प्रकट हैं। कृष्णमूर्ति में तेजी है, रमण में सब शांति है। अगर महावीर को बोलते हुए कोई देखे तो वे कृष्णमूर्ति जैसे होंगे और महावीर को कोई चुप देखे तो वे रमण जैसे होंगे। बुद्ध और क्राइस्ट भी ऐसे ही व्यक्तित्व हैं।
एक तरफ क्राइस्ट इतने शांत हैं कि सूली पर लटकाए जा रहे हैं, तो भी वे परमात्मा से कह रहे हैं कि इन्हें माफ कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं। यह रमण की हालत में हैं। और यही क्राइस्ट चर्च में कोड़ा लेकर चला गया है और सूदखोरों को कोड़े मार कर उनके तख्ते उलट दिए हैं और उनको घसीट कर मंदिर के बाहर निकाल दिया है। वह कृष्णमूर्ति के रूप में हैं।
मुझे कोई कहता है कि कृष्णमूर्ति इतने चिल्ला कर और इतने गुस्से में क्यों बोलते हैं?
जहां सिर्फ सक्रिय समाधि होगी वहां ऐसी घटना घटेगी।
मुझे कोई कहता है कि रमण चुप क्यों बैठे रहते हैं? लोग पूछने जाते हैं
और वे चुप ही बैठे रहते हैं!
तो मैं उनसे कहता हूं कि निष्क्रिय समाधि ऐसी ही होगी। वे चुप होकर ही उत्तर दे रहे हैं। बुद्ध और महावीर और जीसस में ये दोनों घटनाएं एक साथ हैं। बुद्ध और महावीर और जीसस के पास और भी पूर्णतर व्यक्तित्व है। लेकिन बुद्ध और महावीर और जीसस से भी पूर्णतर व्यक्तित्व की संभावना है। और वैसा व्यक्तित्व कृष्ण के पास है।

बुद्ध, महावीर और जीसस में दोनों चीजों के लिए अलग-अलग क्षण हैं। जब
वे निष्क्रिय होते हैं तब अलग मालूम पड़ते हैं, जब वे सक्रिय होते हैं तब वे अलग मालूम होते हैं। और आज तक ईसाई इस बात को हल नहीं कर पाए कि जो जीसस कोड़े मार सकता है, वह जीसस सूली पर चुपचाप कैसे लटक सकता है! ये दोनों बातों का टाइम अलग-अलग है, घड़ी अलग-अलग है। और इसलिए जीसस में बहुत कंट्राडिक्शंस मालूम होते हैं; बुद्ध में भी, महावीर में भी।
कृष्ण का व्यक्तित्व और भी पूर्णतर है। वहां यह कंट्राडिक्शन भी नहीं है। वहां वे दोनों एक साथ हैं। उनके ओंठ पर बांसुरी और उनकी आंख में क्रोध एक साथ है। उनका वचन कि युद्ध में नहीं उतरूंगा और उनका वचन तोड़ देना और युद्ध में उतर जाना एक साथ है। उनकी यह बात कि करुणा ही धर्म है और उनकी यह बात कि युद्ध में लड़ना ही धर्म है, एक साथ है। कृष्ण के व्यक्तित्व में ऐसे अलग खंड बांटने मुश्किल हैं। वहां निष्क्रिय और सक्रिय एक साथ घटित हुआ है। वहां निष्क्रिय और सक्रिय का भेद भी गिर गया है। कृष्ण आध्यात्मिक प्रवेश की मैक्सिमम क्वालिफिकेशन हैं; वे आखिरी, अधिकतम योग्यता हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि रमण या कृष्णमूर्ति जिस मोक्ष में प्रवेश होंगे वह कुछ न्यून क्षमता का होगा। न! इसका यह भी मतलब नहीं है कि बुद्ध और महावीर जिस मुक्ति में जाएंगे उसका आनंद कृष्ण की मुक्ति से कम होगा। न! इसका यह मतलब नहीं है कि इन दोनों में कोई छोटा-बड़ा है। इसका कुल मतलब यह है कि इन तीनों के व्यक्तित्व में भेद है। जहां ये पहुंचते हैं वह तो एक ही जगह है। लेकिन इन तीनों की पर्सनैलिटी.ज में बुनियादी फर्क है।
रमण और कृष्णमूर्ति से सत्यम्, शिवम्, सुंदरम के अतीत होना शुरू हो जाता है, ट्रांसेनडेंस शुरू हो जाता है। रमण और कृष्णमूर्ति के नीचे तीन तल हैं, जहां कोई शिव को पकड़ कर बैठ गया है, जहां कोई सुंदर को पकड़ कर बैठ गया है, जहां कोई सत्य को पकड़ कर बैठ गया है। और हम सब तो उन तीनों तल के भी बाहर खड़े रह जाते हैं--जहां न हमने शिव को पकड़ा है, न हमने सत्य को पकड़ा है, न हमने सुंदर को पकड़ा है। उन तीनों की हमारे जीवन में कोई गति नहीं है।
एक अर्थ में, जब तक हम पहली सीढ़ी पर न खड़े हों तब तक हम मनुष्य होने के अधिकारी नहीं होते। गांधी के साथ मनुष्यता शुरू होती है, अरविंद के साथ मनुष्यता पूरी होती है। और रमण और कृष्णमूर्ति के साथ अति मानव शुरू होता है, कृष्ण के साथ अति मनुष्यता का अंत होता है। हम कहां हैं?
हम पशु नहीं हैं, इतना पक्का है। हम आदमी हैं, इसमें संदेह है। एक बात
तय है कि हम जानवर नहीं हैं। दूसरी बात इतनी तय नहीं है कि हम आदमी हैं। क्योंकि जानवर न होना केवल निषेध है। आदमी होना एक विधायक उपलब्धि है, एक पाजिटिव एचीवमेंट है। प्रकृति हमें "जानवर नहीं हैं" वहां तक छोड़ देती है और आदमी होने का अवसर देती है कि हम आदमी हो सकें। प्रकृति हमें आदमी की तरह पैदा नहीं करती। अगर प्रकृति हमें आदमी की तरह पैदा कर दे तो फिर हम आदमी कभी भी न हो सकेंगे, क्योंकि आदमी होने का पहला कृत्य चुनाव है। अगर प्रकृति हमें चुनाव का मौका न दे तो फिर हम जानवर ही होंगे।
आदमी और जानवर में जो फर्क है वह एक ही है कि जानवर के पास कोई च्वाइस, कोई चुनाव नहीं है। उसके ऊपर कोई चुनाव नहीं है। कुत्ता पूरा कुत्ता पैदा होता है और आप ऐसा नहीं कह सकते कि यह कुत्ता उस कुत्ते से थोड़ा कम कुत्ता है। ऐसा कहेंगे तो आप पागल मालूम पड़ेंगे। सब कुत्ते बराबर कुत्ते होते हैं। दुबले-पतले हो सकते हैं, मोटे हो सकते हैं, लेकिन कुत्तापन बिल्कुल बराबर होगा। लेकिन आप एक आदमी के संबंध में बिल्कुल कह सकते हैं कि यह आदमी थोड़ा कम आदमी है, यह आदमी थोड़ा ज्यादा आदमी है। आदमियत जन्म से नहीं मिलती, इसलिए यह संभव है। आदमियत हमारा सृजन है, आदमियत हम निर्मित करते हैं, आदमियत हमारी उपलब्धि और खोज है। कहें कि आदमियत हमारी डिस्कवरी है, आदमियत हमारा आविष्कार है। लेकिन हम सारे लोग जन्म के साथ यह मान लेते हैं और बड़ी भूल हो जाती है कि हम आदमी हैं।
जन्म के साथ कोई भी आदमी नहीं होता। किसी मां-बाप की हैसियत आदमी पैदा करने की नहीं है। सिर्फ आदमी होने का अवसर पैदा किया जाता है--जस्ट एन अपॅरचुनिटी। जब एक मां-बाप से एक बच्चा पैदा होता है, तो यह आदमी होने की

संभावना पैदा हो रही है। यह आदमी पैदा नहीं हो रहा है; यह सिर्फ पोटेंशियल ह्यूमन बीइंग है। यह चाहे तो आदमी हो सकता है और चाहे तो रुक सकता है।
और मजा यह है कि यदि आदमी चाहे तो आदमी हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो आदमी के पार हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो पशु हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो पशु से भी नीचे गिर सकता है।
अगर हम ठीक से समझें तो आदमियत का मतलब है च्वाइस। आदमी का मतलब है चुनाव की अनंत क्षमता। नीचे पशुओं में कोई चुनाव नहीं है। और ऊपर अरविंद के बाद रमण से जो दुनिया शुरू होती है वहां भी कोई चुनाव नहीं है। पशु जैसे हैं वैसे होने को मजबूर हैं। अगर एक कुत्ता भौंकता है तो यह उसका चुनाव नहीं है। और अगर एक शेर हमला करता है और हिंसा करता है तो यह उसका चुनाव नहीं है।
इसलिए किसी शेर को आप हिंसक नहीं कह सकते। क्योंकि जिसकी अहिंसक होने
की कोई क्षमता ही नहीं है उसको हिंसक कहने का क्या अर्थ है! इसलिए आप किसी जानवर पर अनैतिक होने का जुर्म नहीं लगा सकते और अपराधी नहीं ठहरा सकते। इसलिए हम सात साल के बच्चे तक को अपराधी ठहराने का विचार नहीं करते, क्योंकि हम मानते हैं कि अभी आदमी कहां! अभी जानवर चल रहा है। इसलिए बच्चे को हम जानवर के साथ गिनते हैं। अभी चुनाव शुरू नहीं हुआ।
लेकिन सात साल तक न हो, यह तो समझ में आता है; फिर सत्तर साल तक न हो तब समझ में आना बहुत मुश्किल हो जाता है। कुछ लोग बिना चुनाव के ही जी लेते हैं। प्रकृति उन्हें जैसा पैदा करती है वैसे ही जी लेते हैं।
चुनाव मनुष्य का निर्णायक कदम है। कहां से चुनाव करें? शिव से चुनाव करें? सौंदर्य से चुनाव करें? सत्य से चुनाव करें? कहां से चुनाव करें? साधारणतः दो तरह की बातें रही हैं। एक तो वे लोग हैं, जो कहते हैं, पहले आचरण बदलो, फिर और कुछ गहरा बदला जा सकेगा।
मैं उनसे राजी नहीं हूं। मेरी अपनी समझ यह है कि आचरण को अगर बदलने से शुरू किया तो पाखंड का पूरा डर है, हिपोक्रेसी का पूरा डर है। इसलिए मैं कहता हूं, स्वयं को समझने से शुरू करो, सत्य से शुरू करो। गांधी से शुरू मत करो, अरविंद से शुरू करो। पहले स्वयं को समझने की चेष्टा से शुरू करो। और जिस दिन स्वयं को जान सको उस दिन स्वयं के बाहर जो फैला हुआ विराट है, उसे जानने की चेष्टा को फैलाओ। तो सौंदर्य जीवन में उतरेगा। और जिस दिन इस विराट को जानने की बात भी पूरी हो जाए उस दिन इस विराट के साथ कैसे व्यवहार करना, उसका विस्तार करो। तो शिवम भी फैलेगा। सत्य से शुरू करो, सौंदर्य पर फैलाओ, शिवम पर पूरा करो।
साधारणतः आज तक दुनिया में जितने धर्म हैं वे कहते हैंः शिवम से शुरू करो और सत्यम की यात्रा करो। वे कहते हैंः आचरण से शुरू करो और आत्मा की तरफ जाओ। मैं आपसे कहता हूं, आत्मा से शुरू करो और आचरण को आने दो। असल में, जो आचरण से शुरू करेगा वह हो सकता है जिंदगी बहुत फिजूल के श्रम में गंवा दे।
गांधीजी जिंदगी भर ब्रह्मचर्य का प्रयोग किए, लेकिन अंतिम क्षण तक तय
न कर पाए कि ब्रह्मचर्य उपलब्ध हुआ है या नहीं हुआ। आचरण से शुरू करने की बड़ी तकलीफ है। महावीर को कभी शक न हुआ, बुद्ध को कभी शक न हुआ। गांधी को शक हुआ। उसका कारण है। आचरण से ही जीवन को साधा है, बाहर से ही जीवन को साधा है और भीतर की तरफ बाहर से साध कर गए हैं। मकान के बाहर से साधना शुरू की है और मकान की बाहर की दीवालों को सम्हालना शुरू किया है।
बाहर की दीवालें, बाहर की परिधि जीवन की कितनी ही शुभ हो जाए तो भी जरूरी नहीं है कि भीतर जो जी रहा है वह शुभ होगा। लेकिन अगर भीतर जो जी रहा है वह सत्य हो जाए तो जो बाहर है वह अनिवार्य रूप से शुभ हो जाता है।
सारी दुनिया में पांच-दस हजार वर्षों के धर्मों ने आदमी में कुछ पैदा नहीं कर पाया। उसका कारण यह है कि उनकी प्रक्रिया उलटी है, आचरण से शुरू करते हैं और आत्मा तक जाने की बात कहते हैं। आदमी जिंदगी भर आचरण को सम्हालने में नष्ट हो जाता है और कभी तय ही नहीं कर पाता कि आत्मा को सम्हालने का क्षण आया है। अगर मनुष्य-जाति को सच में धार्मिक बनाना है तो भीतर से शुरू करनी पड़ेगी यात्रा और बाहर की तरफ फैलना पड़ेगा। और मजे की

बात यह है कि भीतर से यात्रा करना सरलतम है, क्योंकि जिसे हम बाहर साध-साध कर भी साध नहीं पाते वह भीतर की साधना से अपने आप सध जाता है। ऐसे ही जैसे कोई आदमी गेहूं बोता है तो भूसा तो अपने आप पैदा होता है, भूसे को अलग से पैदा नहीं करना पड़ता। लेकिन कोई सोचे कि जब गेहूं के साथ भूसा पैदा होता है तो हम भूसा बो दें तो गेहूं भी पैदा हो जाएगा। तो सिर्फ भूसा सड़ जाएगा, गेहूं पैदा नहीं होगा। भूसे के साथ गेहूं पैदा नहीं होता। भूसा बहुत बाहरी चीज है, गेहूं बहुत भीतरी चीज है। असल में, भूसा गेहूं के लिए पैदा होता है, उसकी रक्षा के लिए पैदा होता है। अगर गेहूं नहीं है तो भूसे के पैदा होने की कोई जरूरत नहीं होती।
जब भीतर सत्य पैदा होता है तो उसके आस-पास सौंदर्य और शिव अपने आप पैदा होते हैं रक्षा के लिए। असल में, जब भीतर सत्य का दीया जल जाता है तो अपने आप शिव का आचरण निर्मित होता है, क्योंकि सत्य के दीये को अशिव आचरण में बचाया नहीं जा सकता। जब भीतर सत्य पैदा हो जाता है तो चारों तरफ जीवन में सौंदर्य की आभा फैल जाती है, वैसे ही जैसे दीया जलता है तो घर के बाहर रोशनी फैलने लगती है। अगर इस कमरे में दीया जला हो तो खिड़कियों के बाहर भी रोशनी फैलने लगेगी।
लेकिन आप कहीं, खिड़कियों के बाहर पहले रोशनी फैले और फिर भीतर दीया जलाएंगे, इस खयाल में पड़ गए, तो बहुत खतरा है। हो सकता है कोई नकली रोशनी लाकर बाहर चिपका लें, तो बात अलग है। लेकिन नकली रोशनी अंधेरे से भी बदतर होती है। नकली फूल असली फूल के न होने से भी बुरा होता है। क्योंकि असली फूल न हो तो पीड़ा होती है असली फूल के खोज की, और नकली फूल हाथ में हो तो यह भी खयाल भूल जाता है कि असली फूल को खोजना है। नकली फूल दूसरों को धोखा दे, इससे बहुत हर्जा नहीं, खुद को भी धोखा दे देता है।
मनुष्य-जाति का अब तक का धर्म शिव से शुरू होता था, सत्य की यात्रा पर निकलता था। इसलिए हम बहुत लोगों को न तो शिव बना पाए, न सुंदर बना पाए, न सत्य दे पाए। भविष्य में अगर धर्म की कोई संभावना है तो इस प्रक्रिया को पूरा उलट देना पड़ेगा। सत्य से शुरू करें, शिवम और सुंदरम उनके पीछे आएं। लेकिन ध्यान रहे, सत्य भी उपलब्ध हो जाए, शिवम भी मिल जाए, सुंदरम भी मिल जाए, तो भी हम सिर्फ मनुष्य हो पाते हैं--पूरे मनुष्य। मनुष्य होना काफी नहीं है; जरूरी है, पर काफी नहीं है। नेसेसरी है, इनफ नहीं है, पर्याप्त नहीं है। जैसे ही हम मनुष्य होते हैं, वैसे ही एक नई यात्रा का द्वार खुलता है जो मनुष्य के भी पार ले जाता है। और जब कोई मनुष्यता के पार जाता है, तभी पहली दफे जीवन में उस आनंद को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व का आनंद है, उस स्वतंत्रता को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व की स्वतंत्रता है, उस अमृत को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व का अमृतत्व है।
इन तीनों के बाहर जाना है। लेकिन हम तो इन तीनों में भी नहीं गए हैं।
इन तीनों में जाना है, ताकि इन तीनों के पार जाया जा सके। सत्यम्, शिवम्, सुंदरम यात्रा है, अंत नहीं। मार्ग है, मंजिल नहीं। साधन है, साध्य नहीं। सत्यम्, शिवम्, सुंदरम का यह त्रय प्रक्रिया है, और सच्चिदानंद का त्रय उपलब्धि है। वह सत्, चित्, आनंद है। वह उपलब्धि है। उसकी थोड़ी-थोड़ी झलक मिलनी शुरू होती है। जो अपने जीवन में शिव को उतार लेता है उसके जीवन में... जो सत्य को उतार लेता है अपने जीवन में, उसके जीवन में सुख आना शुरू हो जाता है। लेकिन जहां तक सुख है वहां तक दुख की संभावना सदा मौजूद रहती है। जो तीनों के पार चला जाता है वहां आनंद आना शुरू होता है। आनंद का मतलब है-- जहां न सुख रहा, न दुख रहा।
इसलिए आनंद के विपरीत कोई भी शब्द नहीं है। आनंद अकेला शब्द है मनुष्य की भाषा में जिसका कंट्राडिक्टरी नहीं है, जिसका उलटा नहीं है। सुख का उलटा दुख है; और शांति का उलटा अशांति है; और अंधेरे का उजाला है; और जीवन का मृत्यु है। आनंद का उलटा शब्द नहीं है। आनंद अकेला शब्द है जिसके विपरीत कोई नहीं है। जैसे ही हम सुख और दुख के पार होते हैं, आनंद में प्रवेश होता है।
मुक्ति का द्वार तो रमण और कृष्णमूर्ति से खुल जाता है।

आप कहेंगे, जब द्वार यहीं खुल जाता है, तो बुद्ध और महावीर और कृष्ण तक जाने की क्या जरूरत है?
अलग-अलग व्यक्ति के लिए अलग-अलग बात निर्भर करेगी। मैं बंबई आता हूं
तो बोरीवली उतर सकता हूं, वह भी बंबई का स्टेशन है। दादर भी उतर सकता हूं, वह भी बंबई का स्टेशन है। सेंट्रल भी उतर सकता हूं, वह भी बंबई का स्टेशन है। लेकिन वह टर्मिनस है। और एक सिर्फ प्रारंभ है और एक अंत है।
कृष्ण टर्मिनस पर उतरते हैं, आखिरी, जहां ट्रेन ही खत्म हो जाती है, जिसके आगे फिर यात्रा ही नहीं है। रमण और कृष्णमूर्ति बोरीवली उतर जाते हैं। महावीर और बुद्ध और जीसस दादर को पसंद करते हैं। अपनी पसंद की बात है। लेकिन रमण और कृष्णमूर्ति तक प्रत्येक को पहुंचना ही चाहिए। उसके आगे बिल्कुल पसंद की बात है कि कौन कहां उतरता है। वह बिल्कुल व्यक्तिगत झुकाव है।
लेकिन बहुत दूर हैं रमण और कृष्णमूर्ति, गांधी होना ही कितना मुश्किल मालूम पड़ता है! और कितने लोग बेचारे चर्खा चला-चला कर गांधी होने की चेष्टा करते रहते हैं! चर्खा ही चल पाता है और चर्खा परेशान हो जाता है और वे गांधी नहीं हो पाते। रवींद्रनाथ होना ही कितना मुश्किल है! कितनी तुकबंदी चलती है, कितनी कविताएं रची जाती हैं, लेकिन काव्य का जन्म नहीं हो पाता। कितने लोग आंख बंद करके ध्यान करते हैं, पूजा करते हैं, उपवास करते हैं। अरविंद होना भी मुश्किल है।
लेकिन अगर गांधी गांधी हो सकते हैं, रवींद्र रवींद्र हो सकते हैं, अरविंद अरविंद हो सकते हैं, तो कोई भी कारण नहीं है कि कोई भी दूसरा व्यक्ति क्यों नहीं हो सकता है। मनुष्य का बीज समान है, उसकी संभावनाएं समान हैं, उसकी पोटेंशिएलिटी समान है। एक बार संकल्प हो तो परिणाम आने शुरू हो जाते हैं।
एक छोटी सी घटना, और अपनी बात मैं पूरी करूं। एक घटना मैं पढ़ रहा था, दो दिन हुए। अमेरिका का एक अभिनेता, फिल्म अभिनेता मरा। मरने के पहले उसने-- कोई दस साल पहले--वसीयत की थी कि मुझे मेरे छोटे से गांव में ही दफनाया जाए।
लोग महात्माओं की वसीयतें नहीं मानते, अभिनेताओं की वसीयत कौन मानेगा? जब वह मरा तो अपने गांव से दो हजार मील दूर मरा। कौन फिकर करता? मरने के बाद महात्माओं की कोई फिक्र नहीं करता तो अभिनेताओं की कौन करता? उसको तो वहीं कहीं ताबूत में बंद करके दफना दिया। मरते क्षण भी उसने कहा कि देखो, मुझे यहां मत दफना देना, अगर मैं मर जाऊं। मैं आखिरी बार तुम से कह दूं कि मुझे मेरे गांव तक पहुंचा देना, जहां मैं पैदा हुआ था। उसी गांव में मुझे दफनाया जाए। वह मर गया। लोगों ने कहा, मरे हुए आदमी की क्या बात है! उसको ताबूत में बंद करके दफना दिया।
लेकिन रात ही भयंकर तूफान आया, उसकी कब्र उखड़ गई। उसकी कब्र के पास खड़ा हुआ दरख्त गिर गया। और उसका ताबूत समुद्र में बह गया और दो हजार मील ताबूत ने समुद्र में यात्रा की और अपने गांव के किनारे जाकर लग गया। और जब लोगों ने ताबूत खोला तो सारा गांव इकट्ठा हो गया। वह तो उनके गांव का बेटा था जो सारी दुनिया में जग-जाहिर हो गया था। उन्होंने उसे उसी जगह दफना दिया जहां वह पैदा हुआ था।
उस अभिनेता की जीवन-कथा मैं पढ़ रहा था। उसके लेखक ने लिखा है कि क्या
यह उसके संकल्प का परिणाम हो सकता है? यह क्वेश्चन उठाया है।
अगर मैं आदमियों की तरफ देखूं तो शक होता है कि यह संकल्प का परिणाम कैसे हो सकता है? आदमी जिंदगी में जहां पहुंचना चाहता है वहां जिंदा रहते नहीं पहुंच पाता। यह आदमी मर कर जहां पहुंचना चाहता था कैसे पहुंच पाएगा? लेकिन दो हजार मील की यह लंबी यात्रा और अपने गांव पर लग जाना और उसी रात तूफान का आना, ऐसा भी नहीं मालूम पड़ता कि संकल्प से बिल्कुल हीन हो। संकल्प इसमें रहा होगा।
संकल्प की इतनी शक्ति है कि मुर्दा भी यात्रा कर सकता है, तो क्या हम जिंदे लोग यात्रा नहीं कर सकते? लेकिन हमने कभी यात्रा ही नहीं करनी चाही है, हमने कभी अपनी विल को ही नहीं पुकारा है। हमने कभी सोचा ही नहीं कि हम

भी कुछ हो सकते हैं या हम भी कुछ होने को पैदा हुए हैं या हमारे होने का भी कोई गहरा प्रयोजन है। कोई गहरा बीज हममें छिपा है जो फूटे, वृक्ष बने और फूलों को उपलब्ध हो, हमें वह खयाल ही नहीं है।
इस छोटी सी चर्चा में यह थोड़ा सा खयाल मैं आपको देना चाहता हूं--कि पहले तो जन्म को जीवन मत समझ लेना और पशु न होने को मनुष्य होना मत समझ लेना, मनुष्य की शक्ल को मनुष्य की उपलब्धि मत समझ लेना। मनुष्य होने के लिए श्रम करना पड़ेगा, सृजन करना पड़ेगा, यात्रा करनी पड़ेगी। और मनुष्य होने के लिए शिव से शुरू मत कर देना, अन्यथा लंबी यात्रा हो जाएगी, जन्मों का भटकाव हो जाएगा। मनुष्य की यात्रा शुरू करनी हो तो सत्य से शुरू करना और शिवम तक फैलाना। और अंतिम बात कि सत्य भी मिल जाए, स्वयं भी मिल जाए, शिवम भी मिल जाए, सुंदरम भी मिल जाए, तो भी रुक मत जाना, यह भी पड़ाव नहीं है। मनुष्य के भी ऊपर जाना है। मनुष्य होना जरूरी है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। मनुष्य के ऊपर उठ कर ही मनुष्यता का पूरा फूल खिलता और विकसित होता है।

मेरी ये थोड़ी सी बातें इतनी शांति और प्रेम से सुनीं, इससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य का अन्वेषण
दूसरा प्रवचन

श्रद्धा नहीं, जिज्ञासा

मैं अत्यंत आनंदित हूं और अनुगृहीत भी, सत्य के संबंध में थोड़ी सी बातें आप सुनने को उत्सुक हैं। यह मुझे आनंदपूर्ण होगा कि अपने हृदय की थोड़ी सी बातें आपसे कहूं। बहुत कम लोग हैं जो सुनने को राजी हैं और बहुत कम लोग हैं जो देखने को उत्सुक हैं। इसलिए जब कोई सुनने को उत्सुक मिल जाए और कोई देखने को तैयार हो, तो स्वाभाविक है कि आनंद अनुभव हो। हमारे पास आंखें हैं, और हमारे पास कान भी हैं, लेकिन जैसा मैंने कहा कि बहुत कम लोग तैयार हैं कि वे देखें और बहुत कम लोग तैयार हैं कि वे सुनें। यही वजह है कि हम आंखों के रहते हुए अंधों की भांति जीते हैं और हृदय के रहते हुए भी परमात्मा को अनुभव नहीं कर पाते। मनुष्य को जितनी शक्तियां उपलब्ध हुई हैं, उसके भीतर जितनी संभावनाएं हैं अनुभूति की, उनमें से न के बराबर ही विकसित हो पाती हैं।
एक स्मरण मुझे आता है, उससे ही अपनी चर्चा का प्रारंभ करूं।
किसी देश में एक साधु को कुछ लोगों ने जाकर कहाः कुछ शत्रु तुम्हारे पीछे पड़े हुए हैं और वे तुम्हें समाप्त करना चाहते हैं। उस साधु ने कहाः कोई भी डर नहीं है, जब वे मुझे समाप्त करने आएंगे, तो मैं अपने किले में जाकर छिप जाऊंगा। उस साधु ने कहा कि जब वे मुझे समाप्त करने आएंगे, तो मैं अपने किले में जाकर छिप जाऊंगा।
वह तो एक फकीर था और उसके पास एक झोपड़ा भी नहीं था। उसके शत्रुओं को यह खबर पड़ी और उन्होंने सुना कि उसने कहा है कि जब मुझ पर कोई हमला होगा, तो मैं अपने किले में छिप जाऊंगा। वे हैरान हुए। उन्होंने एक रात उसके झोपड़े पर जाकर उसे पकड़ लिया और पूछा कि कहां है तुम्हारा किला?
वह साधु हंसने लगा और अपने हृदय पर उसने हाथ रखा और कहाः यहां है मेरा किला। और जब तुम मुझ पर हमला करोगे, तो मैं यहां छिप जाऊंगा। असल में मैं वहीं छिपा हुआ हूं और इसलिए मुझे किसी हमले का कोई डर नहीं है।
लेकिन यहां जो किला है उसका हमें कोई भी पता नहीं है। वे लोग भी जो धर्म की बातें करते हैं, ग्रंथ पढ़ते हैं, गीता, कुरान, बाइबिल पढ़ते हैं, वे लोग भी जो भजन-कीर्तन करते हैं, मंदिर, शिवालय और मस्जिद में जाते हैं, उनको भी यहां जो हरेक मनुष्य के भीतर एक केंद्र है उसका उन्हें भी कोई पता नहीं है। उनकी भी बातें बातों से ज्यादा नहीं है और इसलिए उसका कोई परिणाम जीवन में दिखाई नहीं पड़ता। सारी जमीन पर धार्मिक लोग हैं लेकिन धर्म बिल्कुल भी दिखाई नहीं पड़ता है। और सारी जमीन पर मंदिर हैं, मस्जिद हैं, शिवालय हैं, गिरजाघर हैं, लेकिन उनका कोई परिणाम, कोई प्रभाव, कोई प्रकाश जीवन में नहीं है।
इसके पीछे एक ही वजह है कि हम उस मंदिर से परिचित नहीं हैं जो हमारे भीतर है। और हम केवल उन्हीं मंदिरों से परिचित हैं जो हमारे भीतर नहीं हैं। स्मरण रखें, जो मंदिर भीतर नहीं है वह मंदिर झूठा है। स्मरण रखें, वे मूर्तियां जो बाहर स्थापित की गई हैं और वे प्रार्थनाएं जो बाहर हो रही हैं, झूठी हैं। असली प्रार्थना और असली मंदिर और असली परमात्मा प्रत्येक मनुष्य के भीतर बैठा हुआ है। इसलिए धार्मिक आदमी वह नहीं है जो तलाश में परमात्मा की कहीं घूमता हो, धार्मिक आदमी वह है जो सारे घूमने को छोड़ कर अपने भीतर प्रवेश करता है।

इसलिए धार्मिक आदमी की खोज बाहर के जगत में नहीं है। कितनी ही बाहर यात्रा हो वहां कुछ भी उपलब्ध नहीं होगा। लेकिन भीतर भी एक यात्रा होती है और वहां कुछ उपलब्ध होता है। धार्मिक आदमी की खोज भीतर की यात्रा की खोज है।
यह जो मैंने कहा, हम सबके भीतर कुछ केंद्रीय है, जिससे हम स्वयं अपरिचित हैं। और मनुष्य की सारी चिंता, सारा दुख इस एक ही बात से पैदा होता है। उसके जीवन का सारा मनस्ताप, सारी एंग्जाइटी, सारा एंग्विस, जो भी पीड़ा

और परेशानी है वह इस बात से पैदा होती है कि हम करीब-करीब स्वयं से ही अपरिचित हैं, और अपने भीतर जाने का ही रास्ता भूल गए हैं। यह आश्चर्यजनक लग सकता है, हमें कितने रास्ते ज्ञात हैं--हम चांद पर और मंगल पर पहुंचने की कोशिश में हैं, बहुत जल्दी मनुष्य के चरण वहां पड़ जाएंगे। यह भी हो सकता है एक दिन मनुष्य और भी लंबी अंतरिक्ष की यात्राएं करे। मनुष्य ने समुद्र की गहराइयों में जो है वहां तक प्रवेश पा लिया है और अंतरिक्ष में भी वह प्रवेश पा लेगा। लेकिन एक ऐसी भी गहराई है जो बिल्कुल निकट है और जिससे हम बिल्कुल अपरिचित हैं। वह गहराई हमारे प्रत्येक के भीतर, हमारे स्वयं की, हमारे स्वयं की सत्ता की गहराई है।
इस गहराई में कैसे प्रवेश हो सकता है उस संबंध में ही थोड़ी सी बातें
आज मैं आपसे कहना पसंद करूंगा। हो सकता है मेरी कुछ बातें अप्रीतिकर भी लगें। मैं जान कर चाहता हूं कि कुछ बातें अप्रीतिकर हों, क्योंकि जो अप्रीतिकर होता है वह हिलाता है और जगाता है। हो सकता है मेरी कुछ बातें बुरी लगें। मैं जान कर चाहता हूं कि मेरी कुछ बातें बुरी लगें, क्योंकि जो बुरा लगता है उससे चिंतन पैदा होता है और मनुष्य का विचार सजग होता है। फिर भी मैं प्रारंभ में कहूं कि मुझे माफ कर देंगे, अगर कोई बात बुरी लगती हो, कोई बात चोट करती हो, तो क्षमा कर देंगे। बाकी चोट मैं इसीलिए पहुंचाना चाहता हूं ताकि भीतर जो हम बिल्कुल सो गए हैं वहां कुछ जागरण हो।
जीवन के संबंध में या सत्य के संबंध में बहुत सी बातें सुनते-सुनते हम करीब-करीब आत्म-मूर्च्छित हो गए हैं। और वे सब अब हमारे भीतर कुछ भी पैदा नहीं करते हैं, शब्द धीरे-धीरे मर जाते हैं। और मर जाते हैं इसलिए कि हम उनके आदि हो जाते हैं। उनके पुनरुक्ति के कारण, बार-बार रिपीटीशन के कारण वे हमें याद हो जाते हैं, हमारी आदत बन जाते हैं और हमें प्रभावित करना बंद कर देते हैं।
लोग रोज गीता पढ़ते हैं, जो आदमी रोज गीता पढ़ता है वह धीरे-धीरे गीता के प्रति मर जाएगा और गीता उसके लिए मर जाएगी। क्योंकि निरंतर उसे पढ़ने का अर्थ ही यह होगा कि वे सब याद हो जाएंगे और स्मृति में भर जाएंगे और आपके भीतर कुछ भी जगाने में असमर्थ हो जाएंगे।
दुनिया में किसी धर्मग्रंथ के साथ सबसे बुरा जो काम हो सकता है वह उसका पाठ है। निरंतर उसका पाठ सबसे खतरनाक बात है। क्योंकि निरंतर उसके पाठ का एक ही अर्थ होगा कि आप उसके प्रति जो भी सजीवता है, जो भी सजगता है, जो भी स्फूर्ति है, जो भी जीवंत प्रतीति है वह धीरे-धीरे खो देंगे। इसलिए दुनिया में उन कौमों को जिनके पास अदभुत ग्रंथ हैं, अदभुत विचार हैं, एक दुर्भाग्य भी सहना पड़ता है। उन्हें वे विचार और ग्रंथ स्मरण हो जाते हैं और उनकी जो जीवित चोट है वह समाप्त हो जाती है।
एक साधु हुआ है, वह तो कोई फकीर नहीं था, कोई गैरिक वस्त्रों को उसने नहीं पहना और उसने कभी अपने घर को नहीं छोड़ा। वह जब साठ वर्ष का हो गया, उसका पिता अभी जिंदा था। उसके पिता की उम्र तब नब्बे वर्ष थी। उसके पिता ने उसे बुला कर कहा कि देखो, मैं तुम्हें साठ वर्षों से देख रहा हूं तुमने एक भी दिन भगवान का नाम नहीं लिया, तुम एक भी दिन मंदिर नहीं गए, तुमने एक भी दिन सदवचनों का पाठ नहीं किया, अब मैं बूढ़ा हो गया और मरने के करीब हूं, तो मैं तुमसे कहना चाहता हूं, तुम भी बूढ़े हो गए हो, कब तक प्रतीक्षा करोगे, नाम लो प्रभु का, प्रभु के विचार को स्मरण करो, मंदिर जाओ, पूजा करो।
उसके बूढ़े लड़के ने कहाः मैं भी आपको कोई चालीस वर्षों से मंदिर में जाते देखता हूं, पाठ करते देखता हूं, मेरा भी मन होता था कि रोक दूं यह पाठ, मर चुके, और यह मंदिर जाना व्यर्थ हो गया है, आप रोज-रोज वही कर रहे हैं। अगर पहले दिन ही परिणाम नहीं हुआ तो दूसरे दिन कैसे परिणाम होगा? तीसरे दिन कैसे परिणाम होगा? चौथे दिन कैसे परिणाम होगा? जो बात पहले दिन परिणाम नहीं ला सकी है वह चालीस वर्ष दोहराने से भी परिणाम नहीं लाएगी। बल्कि पहले दिन के बाद निरंतर परिणाम कम होता जाएगा, क्योंकि हम उसके आदी होते जाएंगे।

उसके लड़के ने कहाः मैं भी कभी नाम लूंगा, लेकिन एक ही बार। मैं भी कभी स्मरण करूंगा, लेकिन एक ही बार। क्योंकि दुबारा का कोई भी अर्थ नहीं होता है। जो होना है वह एक बार में हो जाना चाहिए, नहीं होना है, नहीं होगा।
कोई उस घटना के पांच वर्षों बाद पैंसठ वर्ष की उम्र में उस साधु ने भगवान का नाम लिया और नाम लेते ही उसकी सांस भी समाप्त हो गई और वह गिर भी गया और उसका निर्वाण भी हो गया। यह अकल्पनीय मालूम होता है कि कैसे होगा? लेकिन जब भी होता है यही होता है। एक ही घटना में, एक ही स्मरण में, एक ही प्रवेश में पर्दा टूट जाता है। और अगर एक में ही न टूटे तो समझना वही चोट बार-बार करनी बिल्कुल व्यर्थ है।
तो मैं कुछ, कुछ बातें, कुछ शब्द, कुछ विचार जिनके प्रति हम मर गए हैं, जिन्हें सुनते-सुनते हम जिनके आदी हो गए हैं, जिनकी चोट विलीन हो गई है उनके संबंध में कुछ बातें आपको कहूं। शायद कोई कोण आपको दिखाई पड़ जाए और कोई बात, कोई क्रांति आपके भीतर संभव हो सके। धर्म हमेशा क्रांति से उपलब्ध होता है। उपक्रम, क्रम से, ग्रेजुअल नहीं उपलब्ध होता है। धर्म धीरे-धीरे उपलब्ध नहीं होता, धर्म हमेशा एक क्रांति से उपलब्ध होता है। जो सोचते हैं कि हम धीरे-धीरे धार्मिक हो जाएंगे, वे गलती में हैं। हिंसक सोचता हो कि मैं धीरे-धीरे अहिंसक हो जाऊंगा, गलती में है। घृणा करने वाला सोचता हो कि मैं धीरे-धीरे प्रेम से भर जाऊंगा, तो गलती में है।
अंधकार मिटाने वाला सोचता हो कि मैं धीरे-धीरे अंधकार को मिटा लूंगा, तो गलती में है। जब प्रकाश जलता है तो अंधकार एक ही क्षण में विलीन हो जाता है। और जब प्रेम जाग्रत होता है तो घृणा एक ही क्षण में विलीन हो जाती है। और जब अहिंसा उठती है तो हिंसा एक ही क्षण में छूट जाती है।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह एक ही क्षण में घटित होता है, क्रमशः घटित नहीं होता। जो भी क्रमशः घटित होता है वही व्यर्थ और क्षुद्र है। जो एक ही साथ जो क्रांति घटित होती है वही मूल्यवान, वही सार्थक, वही अर्थपूर्ण है और वही व्यक्ति को परमात्मा से जोड़ती है। कोई व्यक्ति धीरे- धीरे संसार से दूर होकर परमात्मा को उपलब्ध नहीं होता है। जब भी परमात्मा को कोई व्यक्ति उपलब्ध होता है तो एक छलांग में, एक क्रांति में, एक विस्फोट में उपलब्ध होता है और एक ही साथ सब कुछ परिवर्तित हो जाता है। जैसे हम किसी सोते व्यक्ति को उठा दें, तो क्या वह धीरे-धीरे उठता है? नींद धीरे-धीरे टूटती है? जैसे ही हम किसी को उठा दें, एक क्रांति हो जाती, सपने टूट जाते हैं और जागरण सामने आ जाता है।
धर्म का जीवन भी एक क्रांति का जीवन है। और इसलिए जो लोग धीरे-धीरे का खयाल करते हों वे गलती में हैं। और धीरे-धीरे का खयाल हमारे आलस्य की ईजाद है। हम असल में चाहते नहीं क्रांति इसलिए कहते हैं धीरे-धीरे।
बुद्ध ने कहा हैः कोई अगर आग में गिर जाए और हम उससे कहें, आग के बाहर आ जाओ और वह कहे कि मैं धीरे-धीरे बाहर आऊंगा, आपकी बात का विचार करूंगा, कोशिश करूंगा, प्रयत्न करूंगा, अभ्यास करूंगा फिर बाहर आऊंगा। तो बुद्ध ने कहाः इसका अर्थ हुआ कि उस मनुष्य को आग दिखाई नहीं पड़ रही है। इसका अर्थ हुआ, वह बाहर नहीं निकलना चाहता है। अगर आग दिखाई पड़ गई हो तो कोई यह नहीं कहेगा कि मैं धीरे-धीरे बाहर आऊंगा, जैसे ही दिखाई पड़ेगी आग वह बाहर आ जाएगा। यह अभ्यास से नहीं होगा, यह तात्कालिक तीव्र क्रांति से होगा। कुछ जीवन के संबंध में ऐसे स्मरण जिनसे क्रांति की संभावना पैदा हो जाए, वह भूमिका बन जाए कि क्रांति फलित हो सके, वह मैं आपको कहना चाहता हूं। कोई तीन बातों के संबंध में आज की संध्या विचार करने का मेरा खयाल है।
पहला तो जिनको भी क्रांति से गुजरना हो उनके लिए श्रद्धा खतरनाक है। उन्हें श्रद्धा नहीं, जिज्ञासा चाहिए। और जो भी व्यक्ति श्रद्धा कर लेगा, उसकी सारी प्रगति, उसका सारा विकास बंद हो जाएगा। श्रद्धा एक तरह की मृत्यु है। श्रद्धा का स्वीकार रुक जाना है। और क्रांति की तरफ उठने के लिए श्रद्धा नहीं, जिज्ञासा चाहिए। इसलिए पहले तो इस सूत्र पर मैं विचार करूंः श्रद्धा नहीं, जिज्ञासा।

साधारणतः हम सुनते हैं, विश्वास करो, साधारणतः हम सुनते हैं--गीता कहती हो, कुरान कहता हो, बाइबिल कहती हो उसे मान लो। साधारणतः हम सुनते हैं--बुद्ध, महावीर, मोहम्मद, क्राइस्ट या कृष्ण जो कहते हैं उसे स्वीकार कर लो, और जो स्वीकार नहीं करेगा वह भटक जाएगा। मैं आपसे कहता हूं, जो स्वीकार कर लेगा वह भटक जाता है। मैं यह आपसे कहना चाहता हूं, जो स्वीकार कर लेता है वह भटक जाता है। इसलिए भटक जाता है कि जो भी दूसरों के सत्यों को स्वीकार कर लेता है वह अपने सत्य की खोज से वंचित हो जाता है। चाहे वह सत्य कृष्ण का हो, चाहे बुद्ध का, चाहे महावीर का, अगर उस उधार सत्य को स्वीकार कर लिया तो आपकी अपनी खोज बंद हो जाएगी, आपका अपना अन्वेषण बंद हो जाएगा, आप रुक जाएंगे, ठहर जाएंगे, आपका अपना विकास समाप्त हो जाएगा। और स्मरण रखें, इस दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति को अगर वास्तविक विकास करना हो तो अपना ही विकास करना होता है किसी दूसरे का विकास काम में नहीं आ सकता है, किसी दूसरे का किया गया भोजन आपको तृप्ति नहीं देगा और किसी दूसरे के पहने गए वस्त्र आपके शरीर को नहीं ढकेंगे, किसी दूसरे के द्वारा अनुभव किया गया सत्य भी आपका सत्य नहीं हो सकता है।
इस जगत में कोई भी मनुष्य किसी से उधार सत्य को नहीं पा सकता। लेकिन
हम सब उधार सत्यों को पाए हुए हैं। और हमें सिखाया जाता है कि हम उधार सत्यों को स्वीकार कर लें। हमें निरंतर समझाया जाता है कि हम दूसरों के सत्यों को मान लें, अंगीकार कर लें। हमें संदेह से बचने को कहा जाता है और विश्वास करने को कहा जाता है।
मैं आपसे संदेह करने को कहना चाहूंगा, जिसे भी सत्य जानना हो उसे संदेह करने का साहस करना ही होता है। और संदेह इस जगत में सबसे बड़ा साहस है। स्मरण रखें, जब मैं कह रहा हूं संदेह करना पड़ता है, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अविश्वास करें। अविश्वास भी विश्वास का ही एक रूप है। जो आदमी कहता है, मैं ईश्वर को मानता हूं, यह भी एक विश्वास है। जो आदमी कहता है, मैं ईश्वर को नहीं मानता, यह भी एक विश्वास है। जो आदमी कहता है, आत्मा है, यह भी एक विश्वास है। जो आदमी कहता है, आत्मा नहीं है, यह भी एक विश्वास है। ये दोनों ही विश्वास हैं।
आस्था और अनास्था, श्रद्धा और अश्रद्धा सब श्रद्धा के रूपांतर हैं। दोनों ही स्थिति में हम दूसरों लोगों को मान लेते हैं और खुद खोज नहीं करते हैं। संदेह का अर्थ हैः न श्रद्धा, न अश्रद्धा। संदेह का अर्थ हैः न स्वीकार, न अस्वीकार। संदेह का अर्थ हैः जिज्ञासा। संदेह का अर्थ हैः मैं जानना चाहता हूं क्या है? मैं जानना चाहता हूं सत्य क्या है? और जब तक कोई व्यक्ति सजग न हो इस सत्य के प्रति कि मुझे जानना है कि सत्य क्या है, तब तक उसकी स्वीकृतियां, उसकी श्रद्धाएं, उसके विश्वास उसे कहीं भी ले जाने में समर्थ नहीं होंगे, बल्कि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे क्रमशः जैसे-जैसे उसकी उम्र ढलती जाएगी वैसे-वैसे वह विश्वास को जोर से पकड़ने लगेगा, क्योंकि साहस कम होता जाएगा। इसलिए बूढ़े जल्दी विश्वास कर लेते हैं, जवान मुश्किल से विश्वास करते हैं। बूढ़ों का विश्वास कोई कीमत नहीं रखता। साहस जैसे-जैसे कम होता जाता है विश्वास को पकड़ लेता भय के कारण, सुरक्षा के लिए, डर के कारण, मृत्यु के बाद न मालूम क्या होगा? अगर नहीं स्वीकार किया तो न मालूम किन नरको में पीड़ा भोगनी पड़ेगी? अगर परमात्मा को नहीं माना तो परमात्मा न मालूम क्या बदला लेगा? यह भय जैसे-जैसे घना होता है वैसे-वैसे आदमी विश्वास करने लगता है।
विश्वास कमजोरी है और जो कमजोर है वह सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता। विश्वास भय है। विश्वास आपके किसी न किसी रूप में भय पर, घबड़ाहट पर, डर पर खड़ा हुआ है। और जो डरा हुआ है, भयभीत है, वह सत्य को कैसे पा सकेगा। सत्य को पाने की पहली शर्त तो अभय है। उसे पाने की पहली बुनियाद तो भय को छोड़ देना है। लेकिन हमारे सारे धर्म, हमारे संप्रदाय, हमारे पुरोहित, हमारे पादरी, हमारे धर्मगुरु, हमारे संन्यासी भय सिखाते हैं। उनके भय सिखाने के पीछे जरूर कोई कारण है। छोटे-छोटे बच्चों के मनों में भी हम भय को भर देते हैं और छोटे-छोटे बच्चों के मनों में भी हम श्रद्धा को पैदा करना चाहते हैं।

इसके पहले की वे विचार में सजग हो सकें हम किसी तरह के विश्वास में उनको आबद्ध कर देना चाहते हैं।
दुनिया के सारे धर्म बच्चों के साथ जो अनाचार करते हैं उससे बड़ा कोई अनाचार नहीं है। इसके पहले कि बच्चे की जिज्ञासा जाग सके, वे पूछें कि क्या है, हम उसके दिमाग में वे बातें भर देते हैं जिनका हमें भी कोई पता नहीं। हम उसे हिंदू, मुसलमान, जैन या ईसाई बना देते हैं। हम उसे कुरान या बाइबिल या गीता रटा देते हैं। हम उसे कह देते हैं, ईश्वर है या ईश्वर नहीं है। फिर यही विश्वास जीवन भर कारागृह की तरह उसकी चेतना को बंद किए रहेंगे और वह कभी साहस नहीं कर सकेगा कि सत्य को जान सके।
बच्चों के साथ अगर किन्हीं मां-बापों को, किन्हीं गुरुओं को, किन्हीं अविभावकों को प्रेम हो, तो उन्हें पहला काम करना चाहिए, उन्हें अपना प्रेम तो दें, लेकिन अपने विश्वास न दें, अपनी श्रद्धाएं न दें, अपने विचार न दें। उन्हें उन्मुक्त रखें, उनकी जिज्ञासा को जगाएं लेकिन उनकी जिज्ञासा को समाप्त न करें।
श्रद्धा जिज्ञासा को तोड़ देती है और नष्ट कर देती है। हम सारे लोग ऐसे
ही लोग हैं, जिनकी जिज्ञासाएं बचपन में तोड़ दी गई हैं। और जो किसी न किसी तरह की श्रद्धा, किसी न किसी तरह के विश्वास, किसी न किसी तरह की बिलीफ को पकड़ कर बैठ गए हैं। वह विश्वास ही हमें ऊपर नहीं उठने देता। वह विश्वास ही हमें विचार करने नहीं देता। वह विश्वास कहीं गलत न हो इसलिए हमें जिज्ञासा नहीं करने देता।
जैसा आस्तिक देशों में होता है ठीक वैसा ही जमीन के कुछ हिस्सों पर नास्तिक विचार का प्रचार और प्रोपेगेंडा हो रहा है। वहां समझाया जा रहा है, ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, स्वर्ग नहीं है, नरक नहीं है। छोटे-छोटे बच्चों को ये बातें समझाई जा रही हैं। धीरे-धीरे वे उनके अचेतन मन में प्रविष्ट हो जाती हैं, और फिर वे विचार करने में असमर्थ हो जाते हैं। हम करीब-करीब ऐसे लोग हैं जो विचार करने में बहुत पहले पंगु बना दिए गए हैं। अब हम क्या करें? सबसे पहली बात होगी, हम इस पंगुता को छोड़ दें। मां-बाप ने, समाज ने, परिस्थितियों ने, प्रोपेगेंडा ने जो कुछ आपको दिया हो, उसे एकबारगी अलग कर दें। उस कचरे को जो अलग नहीं करेगा, वह कभी अपने भीतर की अग्नि को उपलब्ध नहीं हो सकता। एक बार उसे हटा ही देना होगा।
संन्यासी हैं जो समाज को छोड़ कर भाग जाते हैं। लेकिन मैं वास्तविक संन्यासी उसे कहता हूं जिसने समाज ने जो-जो सिखाया हो उसे फेंक दिया हो। समाज को छोड़ कर भागना वास्तविक संन्यास नहीं है। समाज ने जो सिखाया हो, समाज ने जो टीचिंग्स दी हों, समाज ने जो विश्वास दिए हों, उन सबको जो फेंक दे वह वास्तविक संन्यासी है। और वैसे के लिए बहुत साहस चाहिए।
इसलिए मैं आपसे कहूं, श्रद्धा नहीं, जिज्ञासा, धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है। और जहां श्रद्धा पहला लक्षण होगा वहां आदमी धार्मिक नहीं हो सकता। और ऐसे ही श्रद्धा वाले धार्मिकों ने सारी दुनिया को नष्ट किया है। धर्म का पूरा इतिहास खून खराबी, बेईमानी, अत्याचार, आक्रमण और हिंसा से भरा हुआ है। वह इन श्रद्धा वाले धार्मिकों के कारण भरा हुआ है। क्योंकि श्रद्धा हमेशा किसी के विरोध में खड़ा कर देती है। एक मुसलमान की श्रद्धा उसे हिंदू के विरोध में खड़ा कर देती है। एक हिंदू की श्रद्धा उसे ईसाई के विरोध में खड़ा कर देती है। एक जैन की श्रद्धा उसे बौद्ध के विरोध में खड़ा कर देती है।
लेकिन खयाल करें, जिज्ञासा किसी के विरोध में किसी को खड़ा नहीं करती। इसलिए श्रद्धा किसी भी हालत में धार्मिक आदमी का लक्षण नहीं हो सकता। जिज्ञासा किसी के विरोध में किसी को खड़ा नहीं करती। यही वजह है कि साइंस जो कि श्रद्धा पर नहीं खड़ी है, जिज्ञासा पर खड़ी है, एक है। पच्चीस तरह की साइंसिज नहीं हैं। हिंदुओं की अलग केमिस्ट्री; मुसलमानों की अलग केमिस्ट्री नहीं है। हिंदुओं का अलग गणित; जैनों का अलग गणित नहीं है। साइंस एक है, क्योंकि साइंस श्रद्धा पर नहीं, जिज्ञासा पर खड़ी है। धर्म भी दुनिया में एक होगा, अगर वह श्रद्धा पर नहीं, जिज्ञासा पर खड़ा हो। और जब तक धर्म अनेक हैं, तब तक धर्म के नाम से झूठ बात चलती रहेगी।

(किसी का बीच में हस्तक्षेप)
अलग-अलग धर्म होंगे, तब तक इस तरह का गुस्सा आना बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन मैं गुस्सा नहीं करूंगा, क्योंकि मेरी कोई श्रद्धा नहीं है। जिसकी श्रद्धा होती है वह गुस्से में आ सकता है। और यह कमजोरी है श्रद्धा की। और दुनिया में जितने श्रद्धालु हैं बहुत जल्दी गुस्से में आ जाते हैं। मेरी कोई श्रद्धा नहीं है, इसलिए मुझे गुस्से में लाना बहुत मुश्किल है। और दुनिया में मैं ऐसे लोग चाहता हूं जो जल्दी गुस्से में न आएं। ऐसे लोगों से धार्मिक दुनिया निर्मित होगी।
अभी तक तो जो कुछ इतिहास में हुआ है, धर्म के नाम से जो कुछ हुआ है, वह
सब अधर्म हुआ है। धर्म के नाम से जो भी प्रचारित किया गया है वह सब झूठ है, बिल्कुल असत्य है। और उस असत्य को जबरदस्ती लादने की हजार-हजार चेष्टाएं की गई हैं। लेकिन अगर कोई मनुष्य जिज्ञासा से प्रारंभ करे, तो स्वाभाविक है कि वे सारे धार्मिक लोग; जिनका व्यवसाय, जिनका धंधा केवल श्रद्धा पर खड़ा होता है, परेशान और गुस्से में आ जाएंगे। इसलिए दुनिया में जब भी कोई धार्मिक आदमी पैदा होता है, तो पुरोहित और ब्राह्मण और पंडित हमेशा उसके विरोध में खड़े हो जाते हैं।
क्राइस्ट को जिन्होंने सूली दी, वे पुरोहित पंडित और धार्मिक लोग थे। सुकरात को जिन्होंने दिया जहर, वे लोग धार्मिक, पुरोहित, विचारशील लोग, पंडित थे। दुनिया में हमेशा पंडित धार्मिक आदमी के विरोध में रहा है। दुनिया में हमेशा पुरोहित धार्मिक आदमी के विरोध में रहा है। क्यों? क्योंकि धार्मिक आदमी सबसे पहले इस बात पर चोट करेगा कि धर्म के नाम पर बना हुआ जो भी प्रचारित संगठन है, धर्म के नाम पर जो भी संप्रदाय हैं, धर्म के नाम पर जो भी झूठे विश्वास और अंधश्रद्धाएं फैलाई गई हैं, वे नष्ट कर दी जाएं।
अगर क्राइस्ट फिर से पैदा हों, तो सबसे पहले जो उनके विरोध में खड़े होंगे, वे ईसाई, पुरोहित और पादरी होंगे। अगर कृष्ण फिर से पैदा हों, तो सबसे पहले उनके विरोध में जो खड़े होंगे, वे वे ही लोग होंगे जो गीता का प्रचार करते हैं और गीता को प्रचारित हुआ देखना चाहते हैं। अगर बुद्ध वापस लौटें, तो बौद्ध भिक्षु उनके विरोध में खड़े हो जाएंगे। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। क्योंकि धर्म एक तरह का विद्रोह है। धर्म सबसे बड़ा विद्रोह है, सबसे बड़ी क्रांति है। और वह क्रांति इस बात से शुरू होती है कि श्रद्धा नहीं, हम जिज्ञासा करें। सत्य पर विश्वास न लाएं। क्योंकि अभी आपको सत्य पता ही नहीं है जिस पर आप विश्वास लाएंगे। अभी तो दूसरे जो आपसे कहते हैं उस पर ही आप विश्वास कर लेंगे। उसके सत्य और असत्य होने का आपको कुछ भी पता नहीं है। ऐसा विश्वास अंधा होगा, सब विश्वास अंधे होते हैं। क्यों? क्योंकि वे दूसरे आपको देते हैं। जो भी अभी आप मानते हैं, वह किसी दूसरे ने आपको दिया है। आपको कुछ भी पता नहीं कि वह ठीक है या गलत है। सिवाय इसके कोई प्रमाण नहीं है कि आपके मां-बाप ने उसे दिया है। आपके मां-बाप के पास भी यही प्रमाण है कि उनके मां-बाप ने उन्हें दिया है। जो परंपरा से उपलब्ध होता है वह कभी सत्य होने की संभावना नहीं है। जो स्वयं की निज खोज से उपलब्ध होता है वही सत्य होता है।
और इसलिए सत्य प्रत्येक को स्वयं पाना होगा, दूसरे से उधार पाने का कोई भी उपाय नहीं है। फिर जितनी गहरी श्रद्धा होगी उतना ही आपके भीतर विवेक का जागरण असंभव हो जाएगा। जितना तीव्र विश्वास होगा उतना ही विवेक क्षीण हो जाएगा। क्योंकि विश्वास विवेक-विरोधी है। वह हमेशा कहता है, मानो, वह यह कभी नहीं कहता, जानो। वह हमेशा कहता है, स्वीकार करो, वह यह कभी नहीं कहता, खोजो। वह हमेशा यह कहता है कि इसको बांध लो अपने मन में, इससे भिन्न मत सोचना, इससे अन्य मत सोचना, इसके विपरीत मत सोचना। जितनी श्रद्धा गहरी होगी, उड़ना उतना मुश्किल हो जाएगा।
मेरे पड़ोस में गांव में एक आदमी रहता था। वह जंगल से तोतों को पकड़ कर लाता और उनको पिंजड़ों में बंद कर देता। कुछ दिन वे तड़फड़ाते, उड़ने की कोशिश करते, फिर धीरे-धीरे पिंजड़ों के आदी हो जाते। यहां तक वे पिंजड़ों के आदी हो जाते कि अगर उनके पिंजड़े को खोल दिया जाए, तो वे थोड़ी देर बाहर जाकर वापस

अपने पिंजड़े में आ जाते। बाहर असुरक्षा लगती और भीतर सुरक्षा मालूम होती। करीब-करीब ऐसी ही हमारे मन की हालत हो गई है। हमारा चित्त परंपरा, संस्कार, दूसरों के दिए गए विचार और शब्दों में इस भांति बंध गया है कि उसके बाहर निकलने में हमें डर लगता है, घबड़ाहट होती है। डर लगता है कि कहीं सुरक्षा न खो जाए। कहीं जिस भूमि को हम अपने पैर के नीचे समझ रहे हैं, कहीं वह हिल न जाए। इसलिए हम डरते हैं, इसलिए हम बाहर निकलने से घबड़ाते हैं। और जो अपने घेरों के बाहर नहीं निकल सकता, वह परमात्मा को कभी नहीं पा सकेगा। उसे मिलने के लिए तो सब घेरे तोड़ ही देने होंगे।
जिसे भी सत्य को पाना है, उसे सत्य के संबंध में सारे मत छोड़ देने होंगे। जिसे भी सत्य को पाना है उसे सारे विश्वास छोड़ कर विवेक को जाग्रत करना होगा। जिसका विवेक जाग्रत होगा, वही केवल सत्य को, वही केवल धर्म के मूलभूत सत्य को अनुभव कर पाता है।
इसलिए मैं चाहता हूं, विवेक छोड़ दें और विवेक को जाग्रत करें। घबड़ाहट क्या है? डर क्या है? डर यह है, डर हम सब अपने भीतर जानते हैं कि जिस विश्वास को हमने पकड़ा है, अगर हमने विचार किया तो वह टिकेगा नहीं। यह हमारी अंतर्निहित प्रज्ञा हमें कहती है कि विश्वास ऊपर है, अगर हमने थोड़ा भी विचार किया तो वह हट जाएगा। और तब घबड़ाहट लगती है। हम कोई भी बिना विश्वास के नहीं होना चाहते हैं। क्यों? कि तब हम अतल सागर में छोड़ दिए मालूम पड़ेंगे। तब हम पिंजड़े के बाहर अनंत आकाश में छोड़ दिए अनुभव होंगे। लेकिन जो इतना डरता है, वह स्मरण रखे, वह किसी संप्रदाय में हो सकता है, किसी धर्म में नहीं हो सकता। वह स्मरण रखे, वह किसी परंपरा में हो सकता है, लेकिन परमप्रज्ञा को नहीं उपलब्ध हो सकेगा।
तो मैं आपको पहली बात कहूं, विश्वास से अपनी नाव को छोड़ लें और जिज्ञासा के अनंत सागर में उसे बहने दें, उसे जाने दें, और घबड़ाएं न, वह कहीं भी जाए घबड़ाने की क्या बात है? डर की क्या बात है? और जो डरा है वह किनारे से ही बंधा रह जाता है। नाव को छोड़ना ही होगा। और हमारी सबकी नाव किसी न किसी भांति के विश्वास से बंधी है।
अगर दुनिया में विश्वास नष्ट हो जाएं, तो धर्म का जन्म हो सकता है। अगर दुनिया में सब विश्वास राख हो जाएं, तो धर्म की अग्नि पैदा हो सकती है। ईश्वर करे कि दुनिया में कोई ईसाई न हो; हिंदू न हो; मुसलमान न हो; जैन न हो।
ईश्वर करे कि यह हो जाए, तो दुनिया में धर्म के होने की संभावना पैदा हो सकती है। धार्मिक धर्म को पैदा नहीं होने दे रहे हैं। और धार्मिक धर्म के जन्म को रोके हुए हैं। अब जिनमें साहस हो, उन्हें चाहिए कि वह धार्मिकों के इस पाखंड को नष्ट कर दें और धर्म के जन्म में सहयोगी बनें।
धर्म का जन्म जिज्ञासा से होगा; धर्म का जन्म विवेक और विचार से होगा। धर्म भी वस्तुतः एक विज्ञान है, एक साइंस है। परम विज्ञान है। वह कोई विश्वास नहीं है कि आप मान लें। वह भी जाना जा सकता है; वह भी अनुभव किया जा सकता है। कौन यह कहता है कि जो क्राइस्ट को अनुभव हुआ, वह आपको अनुभव नहीं होगा? जो यह कहता है, वह दुश्मन है। कौन यह कहता है कि जो बुद्ध को अनुभव हुआ, वह एक सड़क पर झाडू लगाने वाले को अनुभव नहीं होगा? जो यह कहता है, वह मनुष्य का दुश्मन है। हर मनुष्य के भीतर वही परम परमात्मा बैठा हुआ है। तो वह अनुभव, जो क्राइस्ट को हुआ हो, बुद्ध को हुआ हो, रामकृष्ण को हुआ हो, वह हरेक को हो सकता है। हरेक को होना चाहिए।
रुकावट है इसलिए कि हम दूसरों को स्वीकार किए हैं और अपने को जगा नहीं रहे हैं। दूसरों को हटा दें और अपने को जगाएं। आपके भीतर जो बैठा है उससे मूल्यवान और कोई भी नहीं है। और आपके भीतर जो बैठा है उससे पूज्य और कोई भी नहीं है। और आपके भीतर जो बैठा है उससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है। लेकिन मुश्किल यह हो गई है, हमें सिखाया जाता है, अनुकरण करो, फॉलो करो किसी को। कोई कहता है, क्राइस्ट को फॉलो करो; कोई कहता है, महावीर को; कोई कहता है, बुद्ध के पीछे चलो। और मैं आपसे कहता हूं, जो भी किसी के पीछे चलेगा, वह अपने भीतर बैठे परमात्मा का अपमान कर रहा है। किसी के पीछे जाने का कारण क्या है? किसी के पीछे जाने का कारण नहीं है। अपने पीछे चलो और अपने परमात्मा को पहचानो, जो तुम्हारे भीतर है। और जब भी तुम किसी के चरणों में

झुक रहे हो और किसी का पीछा कर रहे हो, तब तुम भीतर बैठे परम सत्य का इतना बड़ा अपमान कर रहे हो जिसका कोई हिसाब नहीं।
बुद्ध के जीवन में एक उल्लेख है अपने पिछले जन्म में, उन्होंने अपने पिछले जन्मों की कथाएं कही हैं। अपने पिछले जन्म में जब वे बुद्ध हुए उसके पहले के जन्म में वे एक गांव में गए। वहां एक बुद्ध पुरुष था, उसका नाम था दीपंकर। वे गए और उन्होंने दीपंकर के पैर छुए। जब वे पैर छूकर उठे, तो उन्होंने देखा कि दीपंकर उनके पैर छू रहा है। तो वे बहुत घबड़ा गए और उन्होंने कहा कि यह क्या कर रहे हैं? मैं एक अज्ञानी हूं, मैं एक सामान्यजन हूं, मैं एक अंधकार से भरी हुई आत्मा हूं। मैंने आपके पैर छुए, एक प्रकाशित पुरुष के, यह तो ठीक था, आपने मेरे पैर क्यों छुए?
दीपंकर ने कहाः तुमने अपने भीतर बैठी हुई प्रज्ञा का अपमान किया है, उसे बताने को। तुम मेरे पैर छू रहे हो यह सोच कर कि प्रकाश इनके पास है और मैं तुम्हारे पैर छू रहा हूं यह घोषणा करने को कि प्रकाश सबके पास है।
वह प्रत्येक के भीतर जो बैठा हुआ है उसे किसी के पीछे ले जाने की कोई
भी जरूरत नहीं है। और जब हम उसे पीछे ले जाने लगते हैं, तभी हम एक कांफ्लिक्ट में, एक अंतर्द्वंद्व में पड़ जाते हैं। असलियत यह है, इस जमीन पर, इस प्रकृति में, इस परमात्मा के राज्य में, दो कंकड़ भी एक जैसे नहीं होते हैं, दो पत्ते भी एक जैसे नहीं होते हैं। सारी जमीन को खोज आएं, दो पत्ते, दो कंकड़ एक जैसे नहीं मिलेंगे। दो मनुष्य भी एक जैसे कैसे हो सकते हैं? प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है। और इसलिए जब कोई व्यक्ति, राम का अनुसरण करके राम बनने की कोशिश करता है; बुद्ध का अनुसरण करके बुद्ध बनने की कोशिश करता है, तभी भूल हो जाती है। इस जगत में परमात्मा ने प्रत्येक को अद्वितीय बनाया है। कोई किसी का अनुकरण करके कुछ भी नहीं बन सकेगा। एक थोथा पाखंड और एक अभिनय भर होकर रह जाएगा।
क्या इस बात के संबंध में इतिहास प्रमाण नहीं है? बुद्ध को मरे पच्चीस वर्ष हुए, क्राइस्ट को मरे दो हजार वर्ष होते हैं। इन दो हजार वर्षों में कितने लोगों ने बुद्ध के पीछे चलने की कोशिश की है और कितने लोगों ने क्राइस्ट के, क्या कोई दूसरा क्राइस्ट और दूसरा बुद्ध पैदा होता है? क्या यह दो हजार, ढाई हजार वर्ष का असफल प्रयास इस बात की सूचना नहीं है कि यह कोशिश ही गलत है? असल में कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य जैसा नहीं हो सकता। और जब भी कोई मनुष्य किसी दूसरे जैसा होने की कोशिश करता है तभी वह अंतर्द्वंद्व में, एक कांफ्लिक्ट में एक परेशानी में पड़ जाता है। जो वह है उसे तो भूल जाता है और जो होना चाहता है उसकी कोशिश पैदा कर लेता है। इस भांति उसके भीतर एक बेचैनी, एक अशांति और एक संघर्ष पैदा हो जाता है। परमात्मा को तो केवल वे ही पा सकते हैं, जो शांत हों। जो अशांत हैं, वे कैसे पा सकेंगे। जो व्यक्ति भी किसी दूसरे की नकल में कुछ होना चाह रहा है, वह अनिवार्यता अशांत हो जाएगा। उसकी अशांति उसे परमात्मा के पास नहीं पहुंचा सकेगी। अगर जुही के फूल गुलाब होना चाहें, और गुलाब के फूल कमल होना चाहें, तो जैसी बेचैनी और परेशानी में पड़ जाएंगे, वैसी बेचैनी और परेशानी हम पड़ जाते हैं जब हम किसी का अनुकरण करते हैं।
इसलिए दूसरी बात आपसे मैं कहना चाहता हूंः अनुकरण नहीं, आत्म-खोज। अनुकरण नहीं, आत्म-खोज। मैंने पहली बात आपसे कहीः श्रद्धा नहीं, जिज्ञासा। दूसरी बात कहना चाहता हूंः अनुकरण नहीं, आत्म-खोज।
किसी का अनुकरण नहीं। कोई किसी के लिए आदर्श नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का आदर्श उसके अपने भीतर छिपा है, जिसे उघाड़ना है। और अगर हम उसे नहीं उघाड़ते और हम किसी के पीछे जाते हैं, हम भूल में पड़ जाएंगे, हम भटकन में पड़ जाएंगे। और मैं आपको कहूं कि आप लाख उपाय करें, क्राइस्ट या बुद्ध या कृष्ण के पीछे जाने का, आप कभी कृष्ण, बुद्ध और क्राइस्ट नहीं हो सकेंगे। लेकिन जो मैं आपसे कह रहा हूं, अगर आप ये उपाय आप छोड़ दें और अपने को खोजें और अपने को जगाएं तो आप कृष्ण, क्राइस्ट और बुद्ध हो जाएंगे। अपनी निज हैसियत में, अपने ही निज व्यक्तित्व में आप उस उपलब्धि और अनुभूति को पा लेंगे। जो पीछे जाने वाला नहीं उपलब्ध करता है, वह अपने भीतर जाने वाला उपलब्ध कर लेता है।

दूसरी बात हैः अनुकरण नहीं। अनुकरण नहीं का अर्थ हुआः किसी मनुष्य के लिए कोई दूसरा मनुष्य आदर्श नहीं है। हो भी नहीं सकता। लेकिन हमें समझाया गया है और हमें बताया गया है कि कोई न कोई आदर्श बनाओ। और जब भी हमसे यह कहा जाता है कि कोई न कोई आदर्श बनाओ, तभी हम क्या करेंगे, हम किसी मनुष्य को आदर्श बना लेंगे। और तब हम उसके भांति होने की कोशिश में लग जाएंगे। यह कोशिश झूठी होगी, इसलिए झूठी होगी कि यह केवल अभिनय होगा।
मैं एक गांव में गया, मेरे एक मित्र वहां साधु हो गए थे, उन्हें देखने गया। एक पहाड़ी के किनारे, एक छोटे झोपड़े में वे रहते थे। मैं उनसे मिलने गया, उनको कोई खबर नहीं की और गया। मैंने खिड़की से देखा, वे अपने कमरे में नंगे होकर टहल रहे हैं। कपड़े उतार दिए हैं, नग्न होकर टहल रहे हैं। मैंने जाकर दरवाजा खटखटाया, उन्होंने जल्दी से दरवाजा खोला, और चादर लपेट कर दरवाजा खोल दिया। मैंने उनसे पूछा कि अभी आप नग्न थे, फिर यह चादर क्यों पहन ली? वे मुझसे बोलेः मैं धीरे-धीरे नग्न साधु होने का अभ्यास कर रहा हूं। अभी मुझे भय मालूम होता है, इसलिए अकेले में नग्न होने का अभ्यास करता हूं। फिर धीरे-धीरे मित्रों के सामने करूंगा, फिर गांव में, फिर धीरे- धीरे मैं अभ्यस्त हो जाऊंगा। मैंने उनसे कहाः किसी सर्कस में भर्ती हो जाएं। क्योंकि नग्न होने का अभ्यास करके जो आदमी नंगा हो जाएगा, वह सर्कस के लायक है, संन्यास के लायक नहीं है।
वे महावीर को अपना आदर्श बनाए हुए थे और उनको खयाल था कि चूंकि महावीर नग्न हो गए, इसलिए मैं भी नग्न हो जाऊं। मैंने उनसे कहाः पता है कि महावीर नग्न अभ्यास करके नहीं हुए थे। महावीर की नग्नता सहज थी। एक वक्त एक प्रतीति, एक संभावना उनके भीतर उदित हुई, उन्हें वस्त्र अनावश्यक हो गए, उन्हें याद भी न रहा कि वस्त्र पहनने हैं। वह उस सरलता को, उस निर्दोष अवस्था को उपलब्ध हुए, जहां ढांकने का उन्हें कोई खयाल ही न रहा, वस्त्र छूट गए। यह तो मेरी समझ में आता है। एक आदमी नग्न होने का अभ्यास करके नग्न हो जाए, इसकी नग्नता बहुत दूसरी होगी, यह अभिनय और पाखंड होगा।
किसी आदमी के भीतर प्रेम का स्फुरण हो और वह सारी दुनिया के प्रति प्रेम से भर जाए और अहिंसा से भर जाए, यह तो समझ में आता है, लेकिन एक आदमी चेष्टा करे, प्रयास करे, अभ्यास करे अहिंसक होने का, यह समझ में नहीं आता। हमारी जितनी भी चेष्टाएं दूसरों को देख कर होंगी, वे हमें गलत ले जाएंगी और हमारे जीवन को व्यर्थ कर देंगी। इसी वजह से सामान्यजन भी उतना असंतुष्ट और अशांत नहीं होता, जितना तथाकथित साधु और संन्यासी होते हैं। वे सारे एक पागलपन में लगे हुए हैं, एक तरह की न्यूरोसिस उनको पकड़े हुए है। किसी दूसरे आदमी जैसा होना है, यह पागलपन है, यह विक्षिप्तता है। किसी दूसरे जैसे होने की कोशिश बिल्कुल पागलपन है। क्योंकि यह सारी चेष्टा का परिणाम होगा, आत्म-दमन। इसका अर्थ होगा, रिप्रेशन। जो तुम हो उसे दबाओ और जो तुम नहीं हो उसको होने की कोशिश करो। ऐसा व्यक्ति अपने ही हाथ से नरक में पहुंच जाता है। चौबीस घंटे नरक में जीने लगता है। जो वह है उसकी निंदा करता है और जो उसे होना है उसकी चेष्टा करता है।
मैं आपसे कहना चाहूंगा, जो आप हैं उसे परिपूर्णतया जानें, और आपके जीवन में क्रांति हो जाएगी। आपको कोई और होने की कोई भी जरूरत नहीं है। जो आप वस्तुतः हैं, उसे ही जान लें, और क्रांति हो जाएगी। और जो आप उपाय करके नहीं पा सकेंगे, वह अपने ही भीतर जाकर आपको उपलब्ध हो जाएगा।
इसलिए मैंने कहाः अनुकरण नहीं, आत्म-खोज। और तीसरी बात मैं आपसे कहना चाहता हूं, क्योंकि हमारी सारी चेतना कुछ ऐसी भ्रांत और गलत बातों से भर गई हैं कि उसे खाली करना बहुत जरूरी है। वह मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि मनुष्य जितना ज्यादा अपने को संवेदनशील बनाए, जितना ज्यादा अपने भीतर संवेदना को पैदा करे, उतना ज्यादा सत्य के करीब पहुंचेगा। इसलिए सत्य की खोज नहीं, संवेदना की उत्पत्ति। इसे समझ लें, अगर एक अंधा आदमी मुझसे आकर कहे कि मुझे प्रकाश को जानना है, तो क्या मैं उसे सलाह दूंगा कि तुम जाओ और प्रकाश के संबंध में लोगों से समझो, वे तुम्हें जो बताएं उसे याद कर लो, तो तुम्हें प्रकाश का पता हो जाएगा?

मैं उससे कहूंगा, प्रकाश के संबंध में मत जानने की फिकर करो, आंख ठीक
हो जाए, आंख का उपचार हो जाए, इसकी चिंता करो। अगर आंख का उपचार हो जाए तो प्रकाश का अनुभव होगा, लेकिन अगर आंख का उपचार न हो तो प्रकाश के संबंध में कुछ भी जान लेने से कोई अनुभव नहीं होता है। आंख संवेदना है, प्रकाश सत्य है। सत्य के खोजी को भी मैं कहता हूं, ईश्वर के खोजी को भी मैं कहता हूं, ईश्वर की फिक्र छोड़ दो, संवेदना की फिक्र करो। हमारी जितनी गहरी संवेदना होगी, उतने ही दूर तक सत्य के हमें दर्शन होते हैं।
मैं आपको देख रहा हूं, मेरी देखने की शक्ति आपके शरीर के पार नहीं जाती। इसलिए मैं आपके शरीर को देख कर वापस लौट आता हूं। अपने को देखता हूं, तो अपने को देखने में भी शक्ति मेरी मन के पार नहीं जाती, तो मन को देख कर वापस लौट आऊंगा। मेरे देखने की शक्ति जितनी गहरी होगी, उतना गहरा सत्य का मुझे अनुभव होगा। जो लोग परमात्मा को अनुभव करते हैं, उनके देखने की शक्ति इतनी तीव्र है कि वे प्रकृति को पार कर जाते हैं और परमात्मा को देख लेते हैं। प्रकृति से अलग कहीं परमात्मा नहीं बैठा हुआ है, जो चारों तरफ दिखाई पड़ रहा है इसमें ही वह छिपा है। अगर हमारी आंख गहरी हो, तो हम आवरण को पार कर जाएंगे और केंद्र को अनुभव कर लेंगे।
इसलिए सवाल ईश्वर की खोज का नहीं, सवाल अपनी संवेदना को गहरा करने का है। हम जितनी गहरा-गहरा अनुभव कर सकें, उतने गहरे सत्य हमें प्रकट होने लगेंगे। लेकिन हमें सिखाई कुछ और बातें गई हैं। हमें सिखाया जाता हैः ईश्वर को खोजो। तब कुछ पागल हिमालय पर ईश्वर को खोजने जाते हैं। जैसे यहां ईश्वर नहीं है! तब कोई एकांत वन में ईश्वर को खोजने जाता है। जैसे भीड़ में ईश्वर नहीं है! तब कोई भटकता है, दूर-दूर तीर्थों की यात्राएं करता है कि वहां ईश्वर मिलेगा। जैसे इन जगहों में जो तीर्थ नहीं है, वहां ईश्वर नहीं है! ईश्वर उसे मिलता है जिसकी संवेदना गहरी हो। न हिमालय पर जाने से मिलता है, न तीर्थों में जाने से मिलता है, न वनों में जाने से मिलता है। संवेदना गहरी हो तो ईश्वर यहीं, इसी क्षण उपलब्ध है। जिसे देखने की शक्ति हो, उसे यहां प्रकाश है और जिसकी आंख न हो ठीक, उसे यहां प्रकाश नहीं है।
इसलिए महत्वपूर्ण ईश्वर की खोज नहीं, संवेदना की खोज है। और हम बहुत
कम संवेदनशील हैं। हम बहुत ही कम संवेदनशील हैं। हमें कुछ अनुभव ही नहीं होता। हम करीब-करीब मूर्च्छित जीते हैं।
रात को अगर चांद निकलता हो, बहुत कम लोग हैं जो अनुभव करते हों उसके सौंदर्य को। अगर रास्ते के किनारे फूल खिले हों, बहुत कम लोग हैं जो अनुभव करते हों उन फूलों के भीतर छिपे हुए रहस्य को। चारों तरफ प्रकृति का जो मिरेकल, जो चमत्कार निरंतर घटित हो रहा है, बहुत कम लोग हैं जो उसे देख पाते हैं। हम अपने में सोए हुए हैं। हम करीब-करीब सोए हुए लोग हैं।
मैं एक मित्र को लेकर एक पहाड़ी पर गया हुआ था। पूर्णिमा की रात थी। हमने नदी में देर तक नाव पर यात्रा की। वे मेरे मित्र स्विटजरलैंड होकर लौट थे। जब तक हम उस छोटी सी नदी में, उस छोटी सी नौका पर थे, तब तक वे स्विटजरलैंड की बातें करते रहे। वहां की झीलों की, वहां के चांद की, वहां के सौंदर्य की। कोई घंटे भर बाद जब हम वापस लौटे, तो वे बोले कि बहुत अच्छी जगह थी जहां आप मुझे ले गए।
मैंने उनसे कहाः क्षमा करें! आप वहां पहुंचे नहीं, मैं तो आपको ले गया,
आप वहां नहीं पहुंचे। मैं तो वहां था, आप वहां नहीं थे।
वे बोले मतलब?
मैंने कहाः आप स्विटजरलैंड में रहे। और मैं आपको यह भी कह दूं कि जब
आप स्विटजरलैंड में रहे होंगे तब आप वहां भी नहीं रहे होंगे, क्योंकि मैं आपको पहचान गया, आपकी वृत्ति को पहचान गया। तब आप कहीं और रहे होंगे।
हम करीब-करीब सोए हुए हैं। जो हमारे सामने होता है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। जो हम सुन रहे हैं, वह हमें सुनाई नहीं पड़ता। हमारा मन किन्हीं और चीजों से भरा रहता है। वही व्यक्ति संवेदनशील हो सकता है जिसका मन शून्य हो। चांद के करीब जिसका मन बिल्कुल शून्य है, वह चांद के सौंदर्य को अनुभव कर लेगा। फूल के करीब जिसका मन बिल्कुल शून्य है, वह फूल के सौंदर्य को अनुभव कर लेगा। अगर मैं आपके पास हूं और बिल्कुल शून्य हूं, तो मैं आपके

भीतर जो भी है उसे अनुभव कर लूंगा। अगर कोई व्यक्ति परम शून्य को उपलब्ध हो गया है, तो इस जगत के भीतर जो भी छिपा है, उसमें उसकी गति और प्रवेश हो जाएगा। जो अपने भीतर भरे हुए हैं, वे बिल्कुल बोथले होते हैं, उनकी कोई संवेदना, सेंसेटिविटी उनमें नहीं होती। और जो अपने में खाली होते हैं, उनके भीतर अदभुत संवेदना का जन्म होता है।
इस जगत में सब तरफ परमात्मा छिपा हुआ है। हमारे भीतर संवेदना चाहिए। लेकिन हम तो पागल हैं, हम तो अपने भीतर बहुत भरे हुए हैं। जो थोड़ी बहुत खाली जगह है, उसे गीता, कुरान और बाइबिल से भर देते हैं। दुकान से भरे हुए हैं, बाजार से भरे हुए हैं, काम-धंधे से, जिंदगी की बातों से भरे हुए हैं। कुछ थोड़ी बहुत खाली जगह है, तो गीता, कुरान, बाइबिल से उसे भर लेते हैं। भीतर सब भर जाता है। भीतर कचरा ही कचरा इकट्ठा हो गया। अपनी खोपड़ी के भीतर देखें; कभी थोड़ी देर बैठ कर देखें, वहां क्या चल रहा है? तो वहां आप पाएंगे, वहां सब फिजूल की बातें भरी हुई हैं। वहां प्रवेश के लिए बिल्कुल जगह नहीं है। वहां कोई संवेदना गति नहीं पा सकती, वहां कोई द्वार नहीं है। ऐसा बंद मस्तिष्क, ऐसी क्षुद्र बातों के बोझ से भरा हुआ मस्तिष्क, कैसे सत्य को, कैसे सौंदर्य को अनुभव कर सकेगा? और फिर इसी मस्तिष्क को लेकर हम भगवान की खोज में निकल जाते हैं--हिमालय पर जाते हैं, गुरुओं के चरणों में जाते हैं, मंदिरों में, मस्जिदों में जाते हैं। यह दिमाग लेकर कहीं भी जाने से कुछ न होगा। इसे खाली कर लें, फिर कहीं जाने की जरूरत नहीं है, जहां होंगे वहीं अनुभूति आनी शुरू हो जाएगी।
सत्य की खोज नहीं, संवेदना। परमात्मा की खोज नहीं, संवेदना का उदघाटन। और संवेदना का उदघाटन होता है मनुष्य जब शून्य हो। इस शून्य को ही मैं समाधि कहता हूं। इस शून्य को ही मैं ध्यान कहता हूं। इस शून्य को ही मैं प्रार्थना कहता हूं। आपकी प्रार्थनाओं को मैं प्रार्थना नहीं कहता। वे तो भरे हुए मस्तिष्क के ही लक्षण हैं। उसमें भी आप कुछ बोले जा रहे हैं, कुछ कहे जा रहे हैं, कुछ रटा हुआ दोहराए जा रहे हैं। ये प्रार्थनाएं नहीं हैं। आपके भजन-कीर्तन प्रार्थनाएं नहीं हैं, ये तो सब भरे हुए मस्तिष्क के लक्षण हैं। आप बोले जा रहे हैं, परमात्मा को बोलने का तो मौका नहीं दे रहे। आप अपना उंड़ेले जा रहे हैं, परमात्मा आपमें अपने को डाल सके, इसके लिए तो आप खाली नहीं हैं।
स्मरण रखें, जब वर्षा होती है, तो जो उठे हुए टीले हैं उन पर पानी नीचे
बह जाता है और जो गड्ढे हैं उनमें भर जाता है।
परमात्मा की वर्षा प्रतिक्षण हो रही है। जो खाली होंगे, वे भर दिए जाएंगे; जो भरे होंगे, वे खाली रह जाएंगे। और पंडित से भरा हुआ आदमी दूसरा नहीं हो सकता। उसका मस्तिष्क तो भरा हुआ होता है।
अपने मस्तिष्क को खाली करना सीखें। और यह सरल है, यह कठिन नहीं है। थोड़े साहस, थोड़े विवेक की जरूरत है। यह संभव है कि आपका मस्तिष्क खाली हो जाए। शून्यता, जागरूकता के परिणाम में उपलब्ध होती है। जो व्यक्ति जितना जागरूक होकर जीवन में जीता है वह उतना शून्य होता जाता है।
समझ लें, मैं यहां एक सौ फीट लंबी और एक फीट चौड़ी लकड़ी की एक पट्टी रख दूं, और आपसे कहूं कि उस पर चलें, तो आप गिरेंगे कि पार निकल जाएंगे? सभी पार निकल जाएंगे। छोटे बच्चे, स्त्रियां, बूढ़े सभी पार निकल जाएंगे। सौ फीट लंबी, एक फीट चौड़ी लकड़ी की पट्टी रखी हुई है, आपसे मैं कहूं चलें इस पर, आप सभी निकल जाएंगे, कोई भी गिरेगा नहीं। फिर समझ लें कि इस ऊपर के स्थान से दीवाल तक वह सौ फीट लंबी पट्टी रख दी गई हो और नीचे यह गड्ढा हो और फिर आपसे कहा जाए, इस पर चलें; आपमें से कितने लोग चल पाएंगे? फर्क तो कुछ भी नहीं हुआ है। वह पट्टी एक फीट चौड़ी और सौ फीट लंबी अब भी है। जितनी जमीन पर रखे समय थी, उतनी अब दो मकानों के ऊपर रखे हुए भी है। फिर अब जाने में डर क्या है? घबड़ाहट क्या है? कितने लोग उसको पार हो पाएंगे? कितने लोग पार जाने की हिम्मत करेंगे? कठिनाई क्या आ गई? उसकी लंबाई-चौड़ाई वही की वही है, आप भी वही के वही आदमी हैं। इस नीचे के गड्ढे से फर्क क्या पड़ रहा है? फर्क यह पड़ रहा है कि जब नीचे पट्टी रखी थी, आपको मूर्च्छित चलना ही संभव था, कोई कठिनाई नहीं थी। आप अपने दिमाग में कुछ भी सोचते हुए चल सकते थे। अब ऊपर

आपको परिपूर्ण जागरूक होकर चलना होगा। अगर जरा भीतर दिमाग में कुछ गड़बड़ हुई, बातें चलीं, आप नीचे हो जाएंगे। घबड़ाहट है आपकी मूर्च्छा। जो जागरूक है वह ऊपर भी चल जाएगा, कोई फर्क नहीं पड़ता, जमीन जैसे नीचे थी वैसे ऊपर भी है। कौन सा फर्क पड़ रहा है? जागरूक अपने शरीर, अपने मन, अपने विचार, सबके प्रति जागा हुआ होता है, मूर्च्छित सोया हुआ होता है। तो नीचे तो चल जाते हैं आप, क्योंकि वहां कोई मूर्च्छा के तोड़ने की जरूरत नहीं है, ऊपर चलने में घबड़ाते हैं।
मुझसे लोग कहते हैं कि जागरूक कैसे हों?
तो मेरे गांव के पास एक छोटी सी पहाड़ी है, वहां एक बड़ा नीचे खंडहर है
और एक छोटी सी पट्टी है, जिस पर चलने में प्राण कंपते हैं। मैं उन्हें वहां ले जाता। और उनसे कहता हूं, इस पर चलें, तो आपको पता चल जाएगा कि जागरूकता क्या है। उस पर दो कदम चलते हैं और कहते हैं कि निश्चित ही इसके भीतर जाते ही एकदम चित्त शून्य हो जाता है और हम एकदम जाग जाते हैं।
जैसे किसी पहाड़ की कगार पर चलते वक्त आप बिल्कुल होश से चलते हैं, ठीक वैसे ही चौबीस घंटे जो आदमी होश को सम्हालता है वह क्रमशः शून्य हो जाता है।
राइट माइंडफुलनेस का मतलब यह हैः सम्यक जागरण, होश। बोधपूर्वक जीने
का अर्थ यह हैः जो भी आप करते हों--उठते हों, बैठते हों, सोते हों, भोजन करते हों, काम करते हों, सड़क पर चलते हों, होशपूर्वक करें। उठना, बैठना, चलना, शरीर की, मन की सारी गतियां होशपूर्वक हों, आपको दिखाई पड़ता रहे कि मैं क्या कर रहा हूं। भीतर मूर्च्छा को तोड़ें। चौबीस घंटे ऐसे जीएं जैसे कि बहुत डेंजर में हैं, बहुत खतरे में हैं। धार्मिक व्यक्ति इस भांति जीता है जैसे डेंजर में है। और डेंजर है! खतरा है! मौत चौबीस घंटे घेरे हुए है। यह छोटा सा गड्ढा तो कोई खतरा नहीं है। एक पहाड़ के किनारे पर चलने में खतरा क्या है? मौत का ही खतरा है न, गिर गए तो मर जाएंगे। और अभी आप सोच रहे हैं कि जिस किनारे पर आप खड़े हैं उसके नीचे मौत नहीं है? चौबीस घंटे हर आदमी मौत के किनारे पर खड़ा हुआ है। जो होश में नहीं है वह पागल है, नासमझ है। चौबीस घंटे पहाड़ की कगार पर आप चल रहे हैं और किसी भी क्षण गिर जाएंगे। रोज लोगों को गिरते देख रहे हैं। रोज लोग गिरते जाते हैं, आप भी गिर जाएंगे। जिंदगी पूरे वक्त मौत के किनारे पर है। एकदम डेंजर चारों तरफ है, खतरा चारों तरफ है। जो सजग नहीं है, वह गलती कर रहा है, वह भूल कर रहा है। चौबीस घंटे की समस्त क्रियाएं, चाहे शरीर की, चाहे मन की, सजग होनी चाहिए। जो व्यक्ति जितना सजग हो जाएगा भीतर, उतना ही पाएगा भीतर शून्य आ जाता है। और जब शून्य आ जाता है, तो आप परमात्मा को अपने भीतर आमंत्रित करने में समर्थ हो जाते हैं। आपका द्वार खुल गया। अब सूर्य की रोशनी भीतर आ सकती है। आपकी आंख खुल गई, अब आप प्रकाश को देख सकते हैं। अब आपके हृदय के कपाट खुल गए, अब परमात्मा प्रवेश कर सकता है। जो खाली है, वह परमात्मा से भर जाता है। खाली हों और परमात्मा को उपलब्ध हो जाएंगे। और जब आप परमात्मा को उपलब्ध होंगे तो सब बदल जाएगा।
मैंने आपसे कहाः श्रद्धा नहीं, जिज्ञासा। और जब आप परमात्मा को उपलब्ध होंगे, तो जिज्ञासा श्रद्धा में परिणित हो जाएगी। तब आप जानेंगे और जानना आपको विश्वास से भर देगा, वह विश्वास बहुत दूसरा है। वह दूसरों का दिया हुआ विश्वास नहीं है, वह स्वयं के ज्ञान से उत्पन्न हुआ है।
और मैंने कहाः ईश्वर की खोज नहीं, संवेदना। जब आपकी संवेदना परिपूर्ण होगी, आप ईश्वर को पा जाएंगे। और मैंने कहाः अनुकरण नहीं, आत्म-खोज। और जब आप स्वयं को जानेंगे, तो आप पाएंगे, आप सबके अनुकरण को उपलब्ध हो गए। फिर क्राइस्ट और बुद्ध और महावीर सबके आदर्श को आप उपलब्ध हो गए। मैंने आपसे कहाः श्रद्धा नहीं, जिज्ञासा। इसलिए कि आप वास्तविक श्रद्धा को उपलब्ध हो सकें। मैंने आपसे कहाः अनुकरण नहीं, आदर्श नहीं, आत्म-खोज, ताकि आप वास्तविक आदर्श को उपलब्ध हो सकें। और मैंने आपसे कहाः ईश्वर नहीं, संवेदना की तलाश, ताकि आप वस्तुतः ईश्वर को अनुभव कर सकें। ये बातें उलटी मालूम हो सकती हैं कि मैं श्रद्धा छोड़ने को कह रहा हूं ताकि श्रद्धा का, वास्तविक श्रद्धा का जन्म हो सके। और मैं ईश्वर को भूलने को कह रहा हूं और

संवेदना पैदा करने को, ताकि ईश्वर पाया जा सके। और मैं सब आदर्श छोड़ने को कह रहा हूं, ताकि वास्तविक आदर्श का आपके भीतर जन्म हो सके। अगर आप मेरी बात को समझेंगे, तो उनमें विरोध नहीं दिखाई पड़ेगा। क्यों? क्योंकि जो खाली है, वह भर दिया जाता है; इसमें विरोध कहां है। खाली ही भरा जा सकता है। जो शून्य है वही केवल पूर्ण को उपलब्ध हो सकता है।
इसलिए समग्र भाव से, अशेष भाव से शून्य हो जाना साधना है। अशेष भाव से शून्य हो जाना समर्पण है। अशेष भाव से शून्य हो जाना परमात्मा के मार्ग पर अपने चरणों को बढ़ा देना है। जो शून्य होने का साहस करता है, वह पूर्ण को पाने का अधिकारी हो जाता है। और प्रत्येक व्यक्ति के भीतर यह संभावना है, यह बीज है कि वह परमात्मा हो सके। अगर हम उपलब्ध नहीं हुए, तो हमारे सिवाय और किसी का उत्तरदायित्व नहीं होगा; अगर हम उपलब्ध नहीं हुए, तो हमारे सिवाय और कोई जिम्मेवार नहीं होगा; अगर हम उपलब्ध नहीं हुए, तो हमारे सिवाय और, और किसी का भी दोष नहीं है।
इसलिए स्मरणपूर्वक इस बात को सोचें और देखें, स्मरणपूर्वक अपनी पूरी संभावनाओं को समझें, स्मरणपूर्वक अपने जीवन को परिवर्तित करें, स्मरणपूर्वक सजग हों और शून्य हो जाएं। और यह खयाल रखें कि कोई परमात्मा को उपलब्ध होता है, तो कोई विशेषता नहीं है। हरेक मनुष्य की उतनी ही संभावना है। लेकिन अगर हम ध्यान ही न देंगे, अगर हम उस तरफ देखेंगे ही नहीं, तो हम अपनी संभावना से वंचित हो जाएंगे। अगर एक बीज वृक्ष हो सकता है, तो सारे बीज वृक्ष हो सकते हैं।
व्यवस्था जुटानी होगी कि बीज वृक्ष हो सकें। पानी और खाद और जमीन और रोशनी जुटानी होगी। क्या है पानी? क्या है खाद? क्या है रोशनी? उसकी मैंने चर्चा की। जिज्ञासा; अनुकरण नहीं, आत्म-खोज। ईश्वर नहीं संवेदना की तलाश। और अपने को भरना नहीं, अपने को खाली कर लेना। यह भूमिका है, जो इसे पूरा करता है, आश्वासन है, सदा से आश्वासन है, वह परमात्मा को निश्चित ही उपलब्ध हो जाता है। और अगर आप परमात्मा को उपलब्ध न हों, तो अपने कर्मों को दोष मत देना, समझना कि कुछ गलत कर रहे थे। समझना कि जहां जिज्ञासा करनी थी वहां श्रद्धा कर रहे थे। समझना कि जहां स्वयं को खोजना था वहां अनुकरण कर रहे थे। समझना कि जहां संवेदना गहरी करनी थी वहां ईश्वर की तलाश में भटक रहे थे। समझना कि जहां शून्य होना था वहां दूसरों के उधार विचारों और ग्रंथों से अपने को भर रहे थे।
कर्मों का दोष नहीं है, दृष्टि का दोष है। और दृष्टि के दोष को छिपाने
के लिए सारी हम बातें कर लेते हैं। कि हमारे कर्म ही बुरे हैं, हमारे पिछले जन्म ही बुरे हैं, इसलिए हम नहीं पा रहे हैं। यह सब का सब अपने को समझाना है। ये सब एक्सप्लेनेशंस हैं, जो झूठे हैं।
मैं आपको कहता हूं, ठीक दृष्टि हो, तो परमात्मा इसी वक्त उपलब्ध है। परमात्मा को तो कभी किसी ने खोया ही नहीं, हम उसमें ही खड़े हुए हैं, केवल दृष्टि गलत है। केवल दृष्टि और जगह भटक रही है। इसलिए उसे जो कि पाया ही हुआ है, हम खोया हुआ अनुभव कर रहे हैं।
दृष्टि वापस लौट आए अपने उस किले पर जो सबके भीतर है, परमात्मा यहीं
और अभी उपलब्ध हो जाता है। ईश्वर करे, दृष्टि लौटे; ईश्वर करे, आपकी श्रद्धा जिज्ञासा बने; ईश्वर करे, आप अन्वेषण में लगें; आपके भीतर प्यास और अभीप्सा पैदा हो और किसी दिन आप उस परम शांति को, परम सौंदर्य को जान सकें। जिसे जाने बिना जीवन झूठा है, जिसे जाने बिना जीवन मृत्यु है; और जिसे जान कर जीवन ही नहीं मृत्यु भी अमृत हो जाती है, उसकी कामना करता हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। मेरी कोई बात बुरी लगी हो, फिर क्षमायाचना करता हूं। लेकिन कहूंगा, उसे सोचना, क्रोध मत करना; क्योंकि क्रोध से कोई हल नहीं होता। मेरी कोई बात बुरी लगी हो, उसे सोचना, क्रोध मत करना। क्रोध से कोई हल नहीं होता; और क्रोध विचार का नहीं, अविचार का लक्षण है। मेरी बात कोई ठीक लगी हो, तो उसे मान मत लेना; प्रयोग करना। क्योंकि मान लेना छोटी बुद्धि का लक्षण है। प्रयोग करना, समझदार का, विवेकशील का लक्षण है। मेरी बात बुरी लगी हो, तो विचार करना।

मेरी बात भली लगी हो, तो मान मत लेना; उस पर प्रयोग करना। जो प्रयोग करता है, वह उपलब्ध होता है। अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य का अन्वेषण
तीसरा प्रवचन

मौन का अर्थ

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैं सोचता था किस संबंध में आपसे बात करूं, यह स्मरण आया कि आपके संबंध में ही थोड़ी सी बातें कर लेना उपयोग का होगा। परमात्मा के संबंध में बहुत बातें हमने सुनी हैं और आत्मा के संबंध में भी बहुत विचार जाने हैं। लेकिन उनका कोई भी मूल्य नहीं है। अगर हम उस स्थिति को न समझ पाएं जिसमें कि हम मौजूदा होते हैं। आज जैसी मनुष्य की दशा है, जैसी जड़ता और जैसा मरा हुआ आज मनुष्य हो गया है, ऐसे मनुष्य का कोई संबंध परमात्मा से या आत्मा से नहीं हो सकता है।
परमात्मा से संबंध की पहली शर्त है, प्राथमिक सीढ़ी है कि हम अपने भीतर
से सारी जड़ता को दूर कर दें। और जो-जो तत्व हमें जड़ बनाते हों, उनसे मुक्त हो जाएं। और जो-जो अनुभूतियां हमें ज्यादा चैतन्य बनाती हों, उनके करीब पहुंच जाएं।
यह हम सुनते हैं कि मनुष्य के भीतर आत्मा है। लेकिन जैसे हम मनुष्य हैं अगर हम विचार करेंगे तो हमारे भीतर शायद मुश्किल से एक प्रतिशत आत्मा होगी और निन्यानबे प्रतिशत शरीर। जब तक आत्मा सौ प्रतिशत न हो जाए तब तक कोई व्यक्ति सत्य को अनुभव नहीं कर सकता। शरीर से मेरा अर्थः आपका जो दिखाई पड़ रहा रूप है उतना ही नहीं है बल्कि जिन-जिन बातों में आपकी चेतना क्रमशः जड़ हो जाती है वहीं-वहीं आप शरीर हो जाते हैं। हमें जो भी सिखाया जाता है और जैसा हमारा जीवन है, वह धीरे-धीरे हमें मनुष्य कम और मशीन ज्यादा बना देता है। हम क्रमशः मशीन होते जाते हैं। और जो आदमी जितनी अच्छी मशीन हो जाता है उतना ही दुनिया में सफल और कुशल समझा जाता है। असल में जो आदमी जितना मर जाता है उतना ही यह जगत उसे सफल मानता है।
इसलिए पहली बात आपसे कहना चाहूंगा कि अपने भीतर यह अनुभव करें कि आप कहीं मशीन तो नहीं हो गए हैं? एक आदमी चालीस वर्ष तक रोज अपने सुबह उठ कर दफ्तर जाता है, ठीक वक्त पर खाना खा लेता है, ठीक बातें जो उसने याद कर ली हैं बोल देता है, ठीक समय पर सो जाता है--सुबह से लेकर दूसरे दिन की सुबह तक उसकी क्रियाओं में सारा का सारा यांत्रिक है। धीरे-धीरे वह आदमी जड़ हो जाता है। उसके भीतर चैतन्य का सारा आविर्भाव बंद हो जाता है। और जो आदमी इस जड़ता को जितनी तीव्रता से पकड़ लेता है, हम कहते हैं, वह आदमी उतना कुशल है, उसकी उतनी ज्यादा योग्यता है। और यह सच है कि मशीन हमेशा मनुष्य से ज्यादा योग्य होती है क्योंकि मशीन कोई भूल-चूक नहीं करती है और मशीन ठीक समय पर काम करती है और अपने समय पर बंद होती है।
इस जगत का जैसा विकास हुआ है वह क्रमशः इस भांति हुआ है कि हम मनुष्य
की जगह मशीन को ज्यादा आदर देने लगे हैं और क्रमशः मनुष्य भी धीरे-धीरे मशीन होता जाता है। जो आदमी जितना ज्यादा मेकेनिकल, जितना ज्यादा यांत्रिक हो जाएगा उतनी ही उसके भीतर की आत्मा सिकुड़ जाती है। उसके प्रकटीकरण के रास्ते बंद हो जाते हैं। हम अपने को देखेंगे तो हम पाएंगे, हम करीब-करीब एक मशीन की भांति हैं जो रोज वही के वही काम कर लेती है। और हम इन कामों को दोहराते चले जाते हैं और एक दिन हम पाते हैं, आदमी मर गया। मृत्यु इसी यांत्रिकता का अंतिम चरण है। हम धीरे-धीरे जड़ होते जाते हैं। एक छोटा बच्चा जितना चैतन्य होता है, एक बूढ़ा उतना चैतन्य नहीं होता। इसलिए क्राइस्ट ने कहा हैः जो छोटे बच्चों की भांति होंगे, वे परमात्मा के राज्य को अनुभव कर सकते हैं। इसका कोई यह अर्थ नहीं कि जिनकी उम्र कम होगी। इसका यह अर्थ है कि जिनके भीतर स्फूर्णा, जिनके भीतर सहज चेतना जितनी ज्यादा होगी, वे उतने जल्दी परमात्मा के करीब पहुंच सकते हैं। वे उतने जल्दी सत्य को अनुभव कर सकते हैं।
जैसा विगत दो हजार, ढाई हजार वर्षों में मनुष्य का विकास होता रहा है,
यह संभावना कम होती गई है। हमारी सहजता, वह जो भी स्पांटेनियस है, वह हमारे भीतर कम होता गया है और हमारी जड़ता बढ़ती गई है। जीवन जैसा है उसमें शायद

जड़ता को बढ़ा लेना उपयोगी होता है। एक आदमी सेना में भर्ती हो जाए, अगर वह चेतन हो, तो सेना उसे इनकार कर देगी। वह जितना जड़ हो, उतना ही अच्छा सैनिक हो सकेगा। जड़ होने का अर्थ हैः उसके भीतर अपनी कोई स्वतंत्र बुद्धि न रह जाए, उसे जो आज्ञा दी जाए वह उसे पूरा का पूरा पालन कर ले, उसमें जरा भी यहां-वहां उसके भीतर कोई कंपन चेतन का नहीं होना चाहिए। इसलिए सैनिक धीरे- धीरे जड़ होता जाता है और जितना जड़ हो जाता है उतना ही हम कहते हैं वह योग्य सैनिक है। क्योंकि जब हम उससे कहते हैं, आदमी को गोली मारो, तो उसके भीतर कोई विचार नहीं उठता, वह गोली मारता है। और जब हम कहते हैं, बाएं घूम जाओ, तो बाएं घूम जाता है, उसके भीतर कोई विचार नहीं उठता। डिसिप्लिन पूरी हो गई और आदमी मर गया। आज्ञा पूरी होने लगी और आदमी भीतर समाप्त हो गया। इसलिए दुनिया में जितने सैनिक बढ़ते जाएंगे, उतना धर्म शून्य और क्षीण होता जाएगा। क्योंकि वे सब के सब इतने अनुशासित होंगे कि उनके भीतर चेतना का कोई प्रवाह नहीं हो सकता। इसलिए मैं सेनाओं के विरोध में हूं, इसलिए कि नहीं वे हिंसा करती हैं बल्कि इसलिए कि इसके पहले कि कोई आदमी हिंसा में समर्थ हो सके, वह जड़ हो जाता है। और दुनिया में जितनी सेनाएं बढ़ती जाएंगी, उतने लोग जड़ होते जाएंगे। और अब तो सारी दुनिया करीब-करीब एक सैनिक कैंप में परिणित होती जा रही है। अब तो हम अपने बच्चों को भी कालेजों में, स्कूलों में सेना की शिक्षा देंगे। और हमें याद नहीं है कि हम जिस आदमी को भी सेना की शिक्षा दे रहे हैं, हम उसे इस बात की शिक्षा दे रहे हैं कि उसके भीतर चेतना क्षीण हो जाए, वह एक मशीन हो जाए, उससे जो कहा जाए, वही वह करे। उसके भीतर अपनी कोई स्वतंत्र विचारणा न रह जाए। अगर यह दुनिया में हुआ तो दुनिया में धर्म विलीन हो जाएगा।
आप सोचते हों कि नास्तिक दुनिया में से धर्म को विलीन कर रहे हैं, तो
आप गलती में हैं। दुनिया में धर्म उन-उन बातों से विलीन हो रहा है, जिन-जिन बातों से हम जड़ होते जाते हैं। जिन-जिन बातों से हमारी चेतना क्षीण होती जाती है। हम जितने ज्यादा अनुशासित हो जाएंगे, जितने ज्यादा डिसिप्लिनड हो जाएंगे, जितनी ज्यादा हम आज्ञाओं के अनुकूल चलने लगेंगे, उतने ही ज्यादा हमारे भीतर मृत्यु की घटना घट जाएगी।
विलियम जेम्स ने एक उल्लेख किया है। उसने लिखा हैः एक आदमी सेना से संघातक चोट लगने के कारण मुक्त हो गया। एक दिन सुबह गांव के बाजार से कुछ सामान लिए सिर पर से लौटता था। विलियम जेम्स अपने किसी मित्र से कह रहा था कि लोग सेना में बिल्कुल जड़ हो जाते हैं, यह आदमी जा रहा है यह बिल्कुल जड़ है। उसके मित्र ने कहाः इसका प्रमाण क्या है? विलियम जेम्स ने कहाः तुम जोर से कहो, अटेंशन, और वह अपने सामान को छोड़ देगा और अटेंशन खड़ा हो जाएगा। उसने कहा, यह तो मुझे संभव नहीं मालूम होता। लेकिन यह प्रयोग किया गया। जोर से उस होटल में बैठे हुए उसके मित्र ने चिल्ला कर कहा, अटेंशन। वह आदमी अपने सिर पर सामान रखा हुआ था, उसके हाथ छूट गए--उसे सेना से मुक्त हुए दो साल हो गए थे--उसका सामान गिर गया, वह अटेंशन खड़ा हो गया। तब उसे खयाल आया कि मैंने यह क्या किया? जेम्स ने कहा, यह आदमी जड़ हो गया है। इसके भीतर अब कुछ भी नहीं है जो चेतन है, जो विचार करता हो, जिसमें बोध हो।
सेनाएं दुनिया को जड़ बनाए दे रही हैं। जितनी ज्यादा टेक्नालॉजिकल, जितनी ज्यादा यांत्रिक व्यवस्था विकसित हो रही है, यंत्रों के साथ प्रतियोगिता करने के लिए मनुष्य को भी यंत्र हो जाना पड़ेगा। उसे भी ऐसी आदतें बना लेनी होंगी जहां कि उसे सोचने का कम से कम मौका रह जाए। जो आदमी जितना ज्यादा सोचता है उतना ही असफल हो जाएगा। जो आदमी बिल्कुल नहीं सोचता और चले जाता है, वह हमें दुनिया में सफल दिखाई पड़ेगा। दुकानें और दफ्तर और हमारे काम और हमारी मशीनें और औद्योगिक विकास मनुष्य को धीरे- धीरे जड़ किए दे रहा है। अगर आपके मन में कोई भी धार्मिक होने की उत्सुकता है, तो इस जड़ता के बाहर जाना एकदम जरूरी है। जो इस भांति जड़ हो जाएगा, उसके भीतर चेतना की लौ बुझ जाएगी। फिर आप कितना ही मंदिर जाएं और कितनी ही प्रार्थनाएं-पूजाएं करें, वह सब व्यर्थ हैं। और सच तो यह है कि व्यवसायियों ने उनको भी जड़ता का रूप दे दिया है। एक आदमी रोज बैठ कर पंद्रह मिनट या आधा घंटा एक मंत्र को दोहरा लेता है, वह भी एक जड़ता है, वह

भी एक मेकेनिकल रिपीटीशन है। वह रोज-रोज वैसा ही दोहराता रहेगा। पूरे जीवन दोहराता रहेगा। जिस दिन नहीं दोहराएगा, उस दिन उसको जरा अड़चन लगेगी, वह कहेगा, आज जरा तकलीफ मालूम होती है, आज मैंने सुबह अपना मंत्र नहीं पढ़ा, आज सुबह मैंने गायत्री या नमोकार नहीं पढ़ा, आज मैंने सुबह की नमाज नहीं की है तो मुझे कुछ बेचैनी मालूम होती है। यह बेचैनी कोई अच्छी बात नहीं है। यह इस बात की सूचना है कि तुम एक आदत के ऐसे जड़ीभूत हो गए हो कि उस आदत को छोड़ने की तुम्हारी हिम्मत नहीं है। यह आदत, एक आदमी सिगरेट पीता है, शराब पीता है, और नहीं उसे सिगरेट मिले, नहीं शराब मिले, तो जैसी बेचैनी होती है उससे भिन्न नहीं है। यह वैसी की वैसी आदत है।
आदतें मनुष्य की चेतना को दबा देती हैं। जिस मनुष्य को आत्मा को उपलब्ध करना हो, उसकी उतनी ही कम आदतें होनी चाहिए, उसके उतने ही कम बंधान होने चाहिए, उसमें उतनी ही कम जड़ता होनी चाहिए। रात जो मैंने कहा, संवेदना का क्या अर्थ है? सेंसेटिव होने का क्या अर्थ है? मेरा प्रयोजन यह था, जितनी कम जड़ता हो उतनी ज्यादा मनुष्य के भीतर संवेदन की शक्ति जाग्रत होगी और जितनी ज्यादा जड़ता हो, उतनी संवेदन की शक्ति शून्य हो जाती है। और संवेदन की शक्ति जितनी गहरी हो, हम सत्य को उतनी ही गहराई तक अनुभव कर पाएंगे और संवेदन की शक्ति जितनी क्षीण हो जाएगी, उतना ही हम सत्य से दूर हो जाएंगे।
तो मैं आपको कहूंगा, जो धार्मिक हैं, वे स्मरण रखें कि धर्म उनकी आदत न
बन जाए। कहीं धर्म भी उनकी एक जड़ आदत न बन जाए कि वे सुबह रोज मंदिर जाएं, नियत समय पर मंदिर जाएं, एक नियत मंत्र पढ़ें, एक नियत देवता के सामने हाथ झुकाएं, यह कहीं उनकी जड़ आदत न हो। और सच यह है कि सौ में निन्यानबे मौके पर यह एक जड़ आदत है और यह आदत बेहतर नहीं है और यह आदत ठीक नहीं है। फिर यह भी स्मरण रखें कि आपने दूसरों की आज्ञाएं स्वीकार कर ली हैं और आप उनके अनुकूल वर्तन कर रहे हैं, उनके अनुकूल आचरण कर रहे हैं, यह भी जड़ता का अंगीकार कर लेना है। जब भी मैं कोई आज्ञा दूं और आप स्वीकार कर लें तो आपकी चेतना भीतर क्षीण हो जाती है।
जब भी दूसरा कुछ कहे और आप स्वीकार कर लें, आपके भीतर की चेतना जड़ होने लगती है। समाज कहता है, संस्कार कहते हैं, पुरोहित कहते हैं, हजारों वर्षों की उनकी परंपरा है उसके वजन पर कहते हैं। उद्धरण करते हैं शास्त्रों का, दबाव डालते हैं कि यह ठीक है और हम उसे मान लेते हैं और उसे स्वीकार कर लेते हैं। धीरे-धीरे हम स्वीकार मात्र पर टिके रह जाएंगे और हमारे भीतर जो स्फुरण होना चाहिए था जीवन का वह बंद हो जाएगा। जीवन के स्फुरण के लिए जरूरी है कि व्यक्ति आज्ञाओं के पीछे नहीं बल्कि स्वयं के विवेक के पीछे चले। और जीवन के स्फुरण के लिए जरूरी है कि जो-जो चीजें जड़ करती हों, व्यक्ति उनसे अपने को मुक्त कर ले। स्वाभाविक यह प्रश्न उठेगा। तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि अगर मैं एक दफ्तर में चालीस वर्षों तक काम करने जाता हूं, तो मैं उस दफ्तर को छोड़ दूं, उस दुकान को छोड़ दूं, उस घर को छोड़ दूं, इसका तो यह अर्थ होगा और यह अर्थ बहुत लोगों ने लिया है।
दुनिया में जो संन्यासी होते रहे हैं, समाज को, घर को, द्वार को छोड़ कर
वे इसीलिए होते रहे हैं कि उन्हें यह लगा कि यह सब तो जड़ किए दे रहा है, इसलिए उसको छोड़ दो। लेकिन वे एक जड़ता को छोड़ते हैं और दूसरी जड़ता को पकड़ लेते हैं। इससे कोई बहुत भेद नहीं पड़ता। संसार को छोड़ कर भागते हैं और संन्यास में जाते हैं और संन्यास उन्हें और भी जड़ कर देता है। मेरा अपना देखना यह है कि मैंने अभी कोई संन्यासी ऐसा नहीं देखा जिसकी संवेदना की शक्ति गृहस्थ की संवेदना शक्ति से ज्यादा हो, कम है। वह और भी जड़ हो गया है। उसके अनुभव करने की सीमाएं और संकुचित हो गई हैं। उसने और इतना दमन किया है और एक पैटर्न पर, एक ढांचे पर अपने जीवन को ढाला है कि उसके भीतर तो और भी चेतना के विकास की संभावना कम हो गई है।
जो संसार से भाग कर संन्यासी होगा, वह एक जड़ता से दूसरी जड़ता में गिर जाएगा। इससे कोई बहुत भेद नहीं पड़ता। इसलिए सवाल संसार से भागने का नहीं है, दफ्तर से भागने का नहीं है, घर से भागने का नहीं है, सवाल यह है कि जो भी आप कर रहे हैं, वह तो करना होगा, लेकिन यह स्मरण रखने का है कि वह आपके भीतर

जड़ता न लाए। और यह हो सकता है। आप जहां हैं वहीं रहते हुए यह हो सकता है कि आपके भीतर जड़ता पैदा न हो और आपके भीतर संवेदना की शक्ति तीव्र हो, चेतना की ज्योति जले। यह कैसे होगा? इसके होने के कुछ नियम हैं, और वे नियम ही धर्म के मूल नियम हैं, वे नियम ही योग की मूल शर्तें हैं।
सबसे पहला नियम तो यह है कि जिस व्यक्ति को सत्य को जानना हो, वह पलायन
की प्रवृत्ति छोड़ दे, एस्केप की प्रवृत्ति छोड़ दे कि यहां तकलीफ है इसलिए यहां से भाग जाऊं। इससे कोई बहुत भेद नहीं पड़ता। आप जहां जाएंगे वहां तकलीफ शुरू हो जाएगी। क्योंकि आप जैसे आदमी हैं वही का वही आदमी दूसरी जगह पहुंच जाएगा।
मैंने सुना है, एक गांव में, सुबह ही सुबह, सर्दी के दिन थे और गांव का परकोटा था, एक बूढ़ा आदमी गांव के बाहर बैठा था। दूसरे गांव से आते हुए एक राहगीर ने उससे पूछा कि क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि इस गांव के लोग कैसे हैं? मैं यहां बसने का इरादा करता हूं।
उस बूढ़े आदमी ने कहाः मैं यह बताऊंगा जरूर कि इस गांव के लोग कैसे हैं, लेकिन मैं पहले यह पूछ लूं कि तुम जिस गांव में बसते थे, वहां के लोग कैसे थे? उसके बाद ही कुछ ठीक-ठीक बताना संभव हो सकता है।
वह आदमी हैरान हुआ। उसने कहाः इससे क्या संबंध है कि उस गांव के लोग कैसे थे?
उस बूढ़े ने कहाः फिर भी मैं पूछ लूं। जीवन भर का अनुभव मेरा यह कहता है
कि पहले मैं यह पूछ लूं कि उस गांव के लोग कैसे थे?
उसने कहाः उस गांव के लोगों का नाम भी मत लो। उन्हीं दुष्टों के कारण
तो मुझे वह गांव छोड़ना पड़ा है।
उस बूढ़े ने कहाः फिर और कोई गांव खोजो, इस गांव के लोग बहुत बुरे हैं, बहुत दुष्ट हैं और यहां रहने से कोई सार नहीं होगा।
और उस बूढ़े आदमी ने ठीक ही कहा। और उस आदमी के जाने के बाद ही एक दूसरा आदमी आया और उसने पूछा कि मैं इस गांव में बसना चाहता हूं, यहां के लोग कैसे हैं? उसने फिर वही कहा कि पहले मैं यह पूछ लूं कि उस गांव के लोग कैसे थे जहां से तुम आते हो? उस आदमी ने कहाः उनका नाम ही मुझे आनंद से भर देता है, उतने बेहतर लोग मैंने कहीं देखे नहीं। वह बूढ़ा बोलाः आओ, स्वागत है, बसो, इस गांव में तुम्हें उस गांव से भी बेहतर लोग मिल जाएंगे।
हम जो हैं, हम सदा अपने को अपने साथ ही ले जाते हैं। तो जो आदमी गृहस्थी में दुखी और पीड़ित और परेशान था, वह संन्यासी होकर कभी आनंदित नहीं हो सकता। क्योंकि वह आदमी तो वही का वह है। कपड़े बदलने से क्या होगा? मकान बदलने से क्या होगा? जो आदमी दुकान पर परेशान और पीड़ित है वह मंदिर में जाकर आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि वह आदमी तो वही का वह है। दुकान थोड़े ही परेशान कर रही है, मकान थोड़े ही परेशान कर रहा है, मंदिर थोड़े ही आनंद देगा। वह आदमी जैसा है अपने साथ ही ले जाएगा। यह बड़े आश्चर्य की बात है, अपने से भागना संभव नहीं होता। कोई आदमी अपने से नहीं भाग सकता। आप सारी दुनिया को छोड़ कर भाग जाएं, लेकिन आप तो अपने साथ होंगे। और आप जैसे आदमी हैं ठीक वैसी दुनिया जहां आप होंगे फिर आप पैदा कर लेंगे। इसलिए जब गृहस्थ भाग कर संन्यासी हो जाते हैं, तो वे नई गृहस्थियां बसाने लगते हैं--शिष्यों की, शिष्याओं की नई दुनिया बसनी शुरू हो जाती है। जब वे घर को छोड़ कर भाग जाते हैं, तो आश्रम बसाने लगते हैं। इधर का राग छोड़ते हैं, तो वहां नया राग पैदा कर लेते हैं। इधर एक तरफ से जो छोड़ कर गए हैं, नई शक्लों में वही का वही फिर से खड़ा हो जाता है। और यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें कोई अस्वाभाविकता नहीं है, क्योंकि आदमी वे वही के वही हैं जो कि घर थे, जो कि दुकान में थे। इसलिए जब कोई आदमी दुकान को छोड़ कर संन्यासी होता है, तो वह धर्म की नई दुकानें शुरू कर देता है। और दुनिया में जो धर्म की नई दुकानें शुरू हुई हैं, वे उन दुकानदारों के कारण हुई हैं जो कि दुकानदार थे और संन्यासी हो गए। उनकी बुद्धि, उनके सोचने के ढंग, उनके गणित और हिसाब वही के वही हैं। उनकी वृत्ति, उनकी पकड़, उनकी एप्रोच वही की वही है, वे वही के वही आदमी हैं। और इसलिए जितने ज्यादा दुकानदार संन्यासी होते जाते हैं उतना ज्यादा संन्यास दुकानदारी में परिणित होता जाता है।

दुनिया को संन्यासियों की जरूरत नहीं है। दुनिया में संन्यास की जरूरत है; संन्यासियों की कोई जरूरत नहीं है। मैं आपसे कहूं, दुनिया में संन्यास की जरूरत है, संन्यासियों की कोई जरूरत नहीं है। दुनिया में संन्यास जितना ज्यादा होगा, दुनिया उतनी ही बेहतर होगी और दुनिया में संन्यासी जितने ज्यादा होंगे, दुनिया उतनी मुश्किल में पड़ती जाएगी। यह कल्पना करिए कि सारे लोग संन्यासी हो गए, इस दुनिया का क्या होगा? यह स्थिति कैसी बदतर हो जाएगी? लेकिन यह कल्पना करिए कि दुनिया में संन्यास बढ़ता जाता है, तो यह दुनिया बहुत बेहतर हो जाएगी।
तो मैं आपको नहीं कहता कि पलायन करें, लेकिन हमारी प्रवृत्ति हमेशा पलायन करने की होती है। जहां हमें तकलीफ दिखाई पड़ती है, हम सोचते हैं, इस स्थान को बदल दें, हम इस जगह को छोड़ दें। लेकिन हमेशा खयाल रखें, स्थान कभी तकलीफ नहीं देता, आपकी भीतर की स्थिति तकलीफ देती है। इसलिए स्थान को बदलने को जो सोचता है, वह पागल है और जो स्थिति बदलने को सोचता है, उसमें कोई समझ का अंकुरण शुरू हुआ। इसलिए मैं कहता हूंः पलायन नहीं, परिवर्तन। भागें मत जहां से हैं, अपने को बदलें। और जहां आप हैं उससे बेहतर स्थिति आपको दुनिया में कहीं भी नहीं मिलेगी, जब तक कि आप बेहतर आदमी न हो जाएं। और जब आप बेहतर आदमी हो जाएंगे, तो जहां आप हैं वहीं बेहतर स्थिति है।
एक विदेशी यात्री पूरब के मुल्कों में यात्रा को आया और उसने सोचा कि मैं देखूं और समझूं कि योग क्या है। उसने भारत के और तिब्बत के और जापान के और दूर-दूर के पूर्वी मुल्कों के जाकर आश्रम देखे। फिर वह बर्मा गया और वहां लोगों ने तारीफ की कि एक आश्रम यहां भी है, उसे भी देखो। उसने जो आश्रम भारत में देखे थे, वे पहाड़ों पर थे, रम्य झीलों के किनारे थे, सुंदर उपवन थे, वहां थे। भारत में जो संन्यासी देखे थे, वे घर छोड़े हुए लोग थे। नये-नये वस्त्रों के लोग थे। उसने सोचा, वैसा ही कोई रम्य स्थल होगा। वह तीन सप्ताह का निर्णय करके बर्मा के उस आश्रम के लिए गया। लेकिन जब जिस गाड़ी से वह गया और जब उसे पहुंचाया गया आश्रम के सामने तो वह दंग रह गया। वह तो एक बाजार था, जहां आश्रम था, और रंगून का सबसे रद्दी बाजार था। और वहां तो बड़ी भीड़भाड़ थी, बड़ा शोरगुल था। और वहीं वह एक छोटी सी तख्ती लगी थी और उसके अंदर एक गंदे रास्ते के अंदर जाकर एक आश्रम था। आश्रम बड़ा था। पांच सौ भिक्षु वहां थे। लेकिन कोई सौ, डेढ़ सौ कुत्ते वहां घूम रहे थे और लड़ रहे थे। वह बड़ा परेशान हुआ कि यह कैसा आश्रम है? और सांझ का वक्त था और सैकड़ों-हजारों कौवे इकट्ठे हो रहे थे झाड़ों पर। इतना शोरगुल वहां मचा हुआ था। उसने सोचा, यह आश्रम है या बाजार है? और यहां, यहां रहने से क्या फायदा होगा? लेकिन आ गया था और अब रात भर रुकना ही पड़ेगा, सुबह के पहले वापस लौटने के लिए कोई गाड़ी भी नहीं थी, तो उसने जाकर प्रधान से मिलना चाहा। प्रधान से उसने कहा कि मैं तो हैरान हो गया, मैं तो सोचता था, आश्रम किसी पहाड़ के किनारे, किसी झील के पास, किसी सुंदर जगह में होगा। यह तो गंदा बाजार है, और यहां ये इतने कुत्ते किसलिए हैं? और ये कौवे सब किसलिए यहां इकट्ठे कर लिए हैं?
उस साधु ने कहाः ये कुत्ते जो हैं, ये हमारे पाले हुए हैं। और कौवे जो हैं, हमारे आमंत्रित हैं। इन्हें हम रोज चावल देते हैं, इसलिए आते हैं। और कुत्ते तो हमने पाले हुए हैं। यह शोरगुल व्यवस्थित है। यह बाजार हमने चुना है जान कर। जमीन बहुत थी हमारे मुल्क में भी सुंदर, लेकिन बाजार हमने जान कर चुना है। क्योंकि हमारी मान्यता यह है कि जो इस भीड़-भाड़ में, इस उपद्रव में शांत हो सकता है, उसकी शांति ही सच्ची है। और जो पहाड़ के पास जाकर बैठ कर शांत हो जाता है, उस शांति में उसके पास कोई शांति नहीं, वह सारी शांति पहाड़ की है; और पहाड़ से नीचे उतरते ही अशांति शुरू हो जाएगी। इसलिए संन्यासी पहाड़ से बस्ती में आने में डरता है। इसलिए संन्यासी अकेलेपन से भीड़ में आने में डरता है। इसलिए संन्यासी लोगों से डरने लगता है कि उनके पास गया कि मेरी सब शांति नष्ट हो जाएगी।
अगर आप किसी संन्यासी से कहें, दुकान पर बैठो। वह घबड़ाएगा। वह कहेगा, मेरी सब शांति नष्ट हो जाएगी। अगर आप किसी संन्यासी से कहें, नौकरी करो। वह कहेगा, मैं घबड़ाऊंगा, मेरा परमात्मा छूट जाएगा। जो परमात्मा नौकरी

करने से छूट जाता हो; और जो परमात्मा दुकान पर बैठ जाने से अलग हट जाता हो, ऐसे परमात्मा की कोई कीमत नहीं है, ऐसे परमात्मा का कोई मूल्य नहीं है। जीवन की सहजता में और सामान्यता में जो उपलब्ध हो, वही सत्य है। जीवन की विशेष-विशेष स्थितियों में जो उपलब्ध हो, वह उन स्थितियों का परिणाम होता है, आपके चित्त का परिवर्तन नहीं होता है।
इसलिए आप ये जितने संन्यासियों को देखते हैं, इनको वापस ले आइए और सामान्य जिंदगी में डाल दीजिए और फिर पहचानिए कि इनके भीतर क्या है, तो आप पाएंगे, ये आपसे गए-बीते बदतर लोग हैं। ये आपसे नीचे साबित होंगे। जिंदगी में ये नहीं टिक सकते--वहां कसौटी है, वहां परीक्षा है। ये एक कोने में बैठे हुए हैं। इनकी सारी शांति आरोपित और पलायन की शांति है। इसलिए इनके भीतर भय और डर बना रहता है। इनके भीतर घबड़ाहट बनी रहती है। इनके भीतर यह हमेशा डर बना रहता है कि अगर मैं गया, सब गड़बड़ हो जाएगा।
मैंने सुना है, एक संन्यासी पहाड़ पर था, हिमालय पर था, बीस वर्षों तक वहां था। और तब उसे लगा कि अब तो मैं परम शांत हो गया हूं। कुछ भक्त भी उसके वहां आने शुरू हो गए। फिर नीचे एक मेला था बड़ा। और उसके भक्तों ने कहा कि नीचे चलें और मेले में लोगों को दर्शन दें। उस संन्यासी ने सोचा, अब तो मैं शांत हो गया हूं, अब यहां रहने का प्रयोजन भी क्या? चलूं। और वह पहाड़ से उतर कर नीचे आया। और जब वह उस मेले में गया, तो वहां तो उसे लोग जानते भी नहीं थे। भीड़ बहुत थी। एक आदमी का जूता उसके पैर पर पड़ गया। जैसे ही उसके पैर में पैर दबा, उसका सारा क्रोध, जिसे वह सोचता था विलीन हो गया है बीस वर्ष पहले, वह वापस खड़ा हो गया। वह वही का वही आदमी था जो बीस वर्ष पहले पहाड़ पर गया था। वह दंग रह गया कि क्रोध वापस खड़ा हो गया! अशांत फिर हो गया है मन! और उसने कहा कि आश्चर्य है, पहाड़ जो बीस वर्षों में न बता सके वह आदमी के संपर्क ने एक क्षण में बता दिया।
तो मैं आपको कहूंगा, पलायन से कोई आदमी धार्मिक नहीं होता है, परिवर्तन से आदमी धार्मिक होता है। इसलिए पलायन की प्रवृत्ति को छोड़ दें। स्थानों से भागें नहीं अपने को बदलें और देखें कि आपकी बदलाहट के साथ स्थान बदल जाते हैं। लोगों से भागें नहीं अपने को बदलें और आप पाएंगे कि आपकी बदलाहट के साथ लोग बदल जाते हैं। जो पति पत्नी को छोड़ कर भाग रहा है, वह गलती में है। अपने को बदले और पाएगा कि पत्नी विलीन हो गई। अपने को परिवर्तित करे और पाएगा कि जिस पत्नी से भागने का खयाल था वह विलीन हो गई है, वह अब कहीं भी नहीं है।
जीवन आत्म-परिवर्तन से उपलब्ध होता है, स्थानों के बदलने से नहीं। लेकिन हमारी जड़ता हमें कहती, स्थान बदल लें। तो मैं आपको कहूंगा कि जहां- जहां जीवन में जड़ता पैदा हो रही है वहां कुछ आंतरिक प्रयोग हैं जो जड़ता को पैदा नहीं होने देंगे और आप निरंतर एक नई ताजगी और एक इनोसेंस को, एक निर्दोष चित्तता को बचा कर रख सकते हैं। और जो नहीं वैसा बचाएगा, उसके लिए धर्म में कोई गुंजाइश, कोई गति नहीं।
कैसे यह होगा? किस भांति मनुष्य के भीतर कुछ चीज डेड हो जाती है, मर जाती है? चेतना कैसे जड़ हो जाती है? चेतना जड़ हो जाती है क्योंकि अतीत का भार हम पर भारी हो जाता है। हम ऐसे लोग हैं जो निरंतर पीछे से दबे रहते हैं।
आप हैरान होंगे, अगर आप चालीस साल जी लिए हैं या पचास साल, तो पचास साल
का कचरा और भार और धूल आपके चित्त पर इकट्ठी हो गई है। मकान तो आप रोज साफ कर लेते हैं, लेकिन चित्त को रोज साफ नहीं करते। मकान से कचरा अगर कोई पचास साल तक न फेंके तो उस मकान की क्या गति होगी? वह आपके चित्त की हो गई है। हम रोज इकट्ठा करते जाते हैं। जो भी आता है वह भीतर इकट्ठा होता जाता है। उसके भार के नीचे चेतना की लौ दब जाती है, मध्यम हो जाती है। फिर वह भार ही भार रह जाता है और चेतना विलीन हो जाती है। वही व्यक्ति चेतना की लौ को सजग रख सकता है जो रोज सांझ को जो भी इकट्ठा हुआ है उसे फेंक दे, खाली हो जाए; बीते कल से खाली हो जाए और जब सुबह उठे तो नये दिन में उठे। नई सुबह और नया सूरज और नये लोग, और भूल जाए कि कल भी कुछ था। और वह जो भी प्रतिक्रियाएं

करे, जो भी कर्म करे वे कल से प्रभावित न हों, वे बिल्कुल सहजस्फूर्त हों। आज से ही प्रभावित हों।
अगर कल एक आदमी आपको गाली दे गया और आज सुबह आपको मिलता है, तो आप उस आदमी को थोड़े ही देखते हैं जो अभी मिल रहा है। वह आदमी कल वाला जिसने गाली दी थी बीच में आ जाता। और यह जो आदमी सामने खड़ा है यह दिखाई नहीं पड़ता है, वह आदमी दिखाई पड़ता है जिसने गाली दी थी। वह आदमी मर चुका, उसे हटा दें बीच से और इस आदमी को देखें जो सामने खड़ा है। हो सकता है वह पश्चात्ताप करके आया हो; हो सकता है वह रात भर में बदल कर आया हो; हो सकता है वह दुखी होकर आया हो। लेकिन आपके बीच में वह आदमी खड़ा हो जाएगा जिसने गाली दी थी। वह मृत छाया बीच में आ जाएगी और इस आदमी से आप जो भी व्यवहार करेंगे वह इस आदमी से नहीं कर रहे हैं, उस आदमी से कर रहे हैं जो कल आपको दिखाई पड़ा था।
बुद्ध के ऊपर एक आदमी ने आकर थूक दिया था। थूक कर वह चला भी गया। फिर बाद में पछताया और दुखी हुआ। क्योंकि बुद्ध ने उस थूक को सिर्फ पोंछ लिया था और उस आदमी से कहा था, कुछ और कहना है? किसी भिक्षु ने पूछा कि आप कहते हैं कुछ और कहना है? उस आदमी ने थूका है। बुद्ध ने कहाः कोई बात इतनी प्रगाढ़ रूप से कहना चाहता होगा, जिसे शब्द कहने में समर्थ नहीं हो सके, इसलिए थूक कर उसने जाहिर किया है। गुस्सा तेज है। उसने गुस्से को जाहिर किया है। इसलिए मैं पूछता हूं, कुछ और कहना है? यह तो मैं समझ गया। लेकिन वह आदमी कुछ कह नहीं सका, वापस चला गया। पछताया, दूसरे दिन क्षमा मांगने आया।
उसने बुद्ध के पैर छुए, उसने कहाः मुझे माफ कर दें। मुझसे कल भूल हो गई थी। बुद्ध ने कहाः वह भूल उतनी बड़ी नहीं थी जितनी बड़ी भूल यह है कि तुम उसे अब तक याद रखे हो। बुद्ध ने कहाः वह भूल उतनी बड़ी नहीं थी। थूका, मैंने पोंछ दिया। बात समाप्त हो गई। मामला ही क्या है? दिक्कत कहां है? कठिनाई क्या है उससे? लेकिन यह कि तुम उसे अभी तक याद रखे हो, चौबीस घंटे बीत गए। यह तो बहुत बड़ी भूल है। यह तो बहुत बड़ी भूल है। मैं तुम्हें वही आदमी नहीं मानता हूं जो थूक गया था। यह दूसरा आदमी है जो मेरे सामने आया, क्योंकि यह तो कह रहा है कि मुझसे भूल हो गई, क्षमा कर दो। यह वही आदमी नहीं है जो थूक गया था। यह बिल्कुल दूसरा आदमी है। मैं किसको क्षमा करूं? जो थूक गया था वह तो अब कहीं है नहीं और जो क्षमा मांग रहा है उसने मुझ पर थूका नहीं था। बुद्ध ने कहाः जिसने मुझ पर थूका था वह अब है नहीं कहीं भी इस दुनिया में, खोजने पर नहीं मिलेगा और जो क्षमा मांग रहा है उसने मुझ पर थूका नहीं था। मैं किसको क्षमा करूं? और तुम किससे क्षमा मांग रहे हो? जिस पर थूक गए थे वह तो बह गया। जैसे नदी बही जा रही है। हम सोचते हैं, वही गंगा है जिस पर हम कल भी आए थे। गंगा बह गई। बहुत पानी बह गया जब आप कल आए थे। अब यह बिल्कुल दूसरा पानी है जिसको आप कल की गंगा समझ रहे हैं। और जैसे गंगा बह जाती है वैसा आपका चित्त भी बह रहा है। वह प्रतिक्षण बहा जा रहा है। वहां कुछ भी ठहराव नहीं है उस चित्त में। तो बुद्ध ने कहाः तुम किससे क्षमा मांगते हो? वह आदमी तो बह गया। अब मैं कैसे क्षमा करूं? तो बुद्ध ने कहाः इतना ही स्मरण रखो, जो हो गया, उसे जाने दो, बह जाने दो। जो है, उसमें जागो। हम जो बीत गया है उससे इतने चिपटे रहते हैं कि जो है उसमें नहीं जाग पाते। हम सारे लोग मुर्दा लाशों को लिए रहते हैं इसलिए जिंदा आदमी नहीं हो पाते। अतीत को मर जाने दें तो आपको जीवन मिलेगा। और जो आदमी जितने अतीत को मर जाने देगा और रोज नया हो जाएगा, रोज ताजा हो जाएगा और ऐसे जागेगा जैसे पहली बार दुनिया में पैदा हुआ है, उस आदमी के भीतर जड़ता इकट्ठी नहीं होगी। क्या आपको स्मरण है कि पहले दिन आप जब अपनी पत्नी से मिले थे, उसी भांति अब भी मिलते हैं। अब वह सब जड़ हो गया है। अब बीस वर्षों की स्मृतियां बीच में खड़ी हो गई हैं और ये बीस वर्षों की स्मृतियां आपकी पत्नी को आपसे बहुत दूर किए दे रही हैं, आप बहुत दूर हो गए हैं। और इसीलिए जो आनंद पहले क्षण में मिल कर आपको अपनी पत्नी से मिला था, वह आज नहीं मिलेगा। लेकिन अगर ये बीस वर्षों की स्मृतियां बीच से गिर जाएं और आप नये होकर और नई पत्नी को देख पाएं, तो शायद वही आनंद का क्षण फिर उपलब्ध हो जाए।

आप रोज सुबह सूरज को देखते हैं, सोचते हैं, वही सूरज फिर उग रहा है। कोई सूरज दुबारा नहीं उगता। और आप फूलों के पास से गुजरते हैं, सोचते हैं, वही फूल फिर खिले हैं। कोई फूल दुबारा नहीं खिलते और कोई तारे दुबारा नहीं निकलते। सब नया है। अगर आपकी स्मृति का भार न हो तो जीवन आपको प्रतिक्षण नया मालूम होगा। और जब आप इस नवीन के प्रति जाग सकेंगे और अपनी जड़ता को छोड़ देंगे तो आपको कुछ अनुभूतियां मिलनी शुरू होंगी, जिन अनुभूतियों की समग्रता का नाम परमात्मा है। तब आपको कुछ अनुभव होना शुरू होगा। जो अतीत से दबा है वह कभी परमात्मा को नहीं जान सकता, क्योंकि परमात्मा प्रतिक्षण मौजूद है। परमात्मा अतीत नहीं है, परमात्मा प्रतिक्षण वर्तमान है। जो अतीत से दबा है वह वर्तमान को नहीं जान सकता।
तो आपकी सारी जड़ता अतीत पैदा करता है। एक साधु ने अपने शिष्य को कहा था, तुम जाओ, जो तुम मेरे पास नहीं समझ सके हो, वह मेरा एक मित्र है उसके पास जाकर समझ सकते हो। वह उसके मित्र के पास गया। देख कर हैरान हुआ कि जहां उसे भेजा गया है वह तो एक सराय का रखवाला है। जाते से ही उसका मन यह हुआ कि सराय के रख वाले से मैं क्या सीखूंगा? लेकिन फिर भी भेजा गया हूं, तो वह रुका। उसके गुरु ने कहा था, तुम सुबह से सांझ तक देखना कि वह क्या करता है? उसकी पूरी चर्या को समझना। उसकी पूरी चर्या उसने समझी। वह तो सराय का नौकर था। सराय का काम करता था। दो-चार दिन बाद वापस लौटने लगा। वहां तो पाने को कुछ भी नहीं था। लेकिन उसने सोचा, मुझे पता नहीं कि यह रात को सोते वक्त कुछ करता हो, सुबह अंधेरे में जग आता है उस वक्त कुछ करता हो, तो उसने चलते वक्त उससे पूछा कि क्या मैं यह पूछूं कि रात को सोते समय आप क्या करते हैं और सुबह जाग कर क्या करते हैं? उसने कहा कि दिन भर में सराय के बर्तन गंदे हो जाते हैं, रात सोते वक्त उनको झाड़-पोंछ कर, साफ करके रख देता हूं। फिर रात भर में उनमें धूल जम जाती है, सुबह उठ कर फिर उनको साफ करता हूं। उसने सोचा कि कहां के पागल के पास मुझे भेज दिया। वह केवल सराय का रखवाला है और बर्तन साफ करता है। वह वापस लौट आया।
उसने अपने गुरु को कहा। गुरु ने कहा कि बात तो पूरी थी अगर तुम समझते। उसने कहा कि दिन भर में बर्तन गंदे हो जाते हैं, सांझ में साफ कर लेता हूं। रात भर में फिर थोड़ी-बहुत धूल जम जाती है, सुबह फिर साफ कर लेता हूं। यही तो कुल जमा करना है।
वह चित्त हमारा दिन भर में गंदा हो जाता है, उसे रात सोते वक्त साफ कर लें, उसे पोंछ डालें। और सुबह सपने फिर रात भर में कुछ गंदा कर देंगे, सुबह फिर उसे पोंछ डालें। कैसे पोंछेंगे? क्योंकि मकान पोंछना तो हमें मालूम है लेकिन चित्त को कैसे पोंछेंगे? चित्त को कैसे साफ करेंगे? कौन सा जल है जो चित्त के बर्तन को साफ करेगा? मैं आपको कहूं, मौन, मौन चित्त को साफ करता है। जो जितना ज्यादा मौन में प्रविष्ट होता है उतना उसके चित्त का बर्तन साफ हो जाता है। मौन के जल से चित्त के बर्तन धोए जाते हैं। लेकिन हम मौन रहना भूल गए हैं। हम एकदम बोले जा रहे हैं, दूसरों से या अपने से। हम चौबीस घंटे बातचीत में लगे हुए हैं, अपने से या दूसरों से। सोते समय भी हम बातचीत करते हुए सोते हैं, उठते ही हम फिर बातचीत में लग जाते हैं। हम बातों से घिरे हुए हैं। मौन हम भूल गए हैं।
इस संसार में अगर कोई चीज खो गई है, तो मौन खो गया है। और जहां मौन खो जाएगा, वहां जीवन में जो भी श्रेष्ठ है वह सब खो जाएगा। क्योंकि सब श्रेष्ठ मौन से जन्मता है, वह साइलेंस से पैदा होता है।
रात को सोते वक्त घड़ी भर को बिल्कुल साइलेंस में उतर जाएं, बिल्कुल चुप हो जाएं, सब तरह से मौन हो जाएं। सुबह उठते वक्त सब भांति मौन होकर थोड़ी देर पड़े रहें और फिर उठें। और दिन में भी चौबीस घंटे यह खयाल रहे कि जहां तक बन पड़े, मेरे भीतर मौन हो। जो अति आवश्यक है वह बोला जाए; जो अति आवश्यक है वह सोचा जाए; अन्यथा मेरे भीतर मौन हो। और अगर कोई सजग होकर इसका स्मरण रखे कि मेरे भीतर मौन हो, तो धीरे-धीरे मौन का अवतरण शुरू हो जाता है। अगर रास्ते पर चलते वक्त आप यह खयाल रखें कि मैं मौन चलूं। पहले तकलीफ होगी। जीवन भर की आदत है। शायद अनेक जीवन की आदत है। लेकिन धीरे-धीरे स्मरणपूर्वक अगर भोजन करते वक्त स्मरण रखें कि मैं मौन रहूं।

मौन का यह अर्थ नहीं कि ओंठ बंद हों। मौन का अर्थ है, भीतर मन का चलन-हलन बंद हो, भीतर वहां चुप्पी हो। जब भी मौका मिले मौन हो जाएं। जिस क्षण आप मौन में हैं उसी क्षण आप मंदिर में हैं। चाहे फिर वह दुकान हो, चाहे फिर वह बाजार हो, चाहे वह दफ्तर हो। जीवन का अधिकतम क्षण मौन में व्यतीत हो, इसका स्मरण रखें। और आप क्रमशः एक नये आदमी को अपने भीतर आते हुए अनुभव करेंगे। क्रमशः आपके भीतर एक नये मनुष्य का जन्म होने लगेगा। आप बिल्कुल नई चेतना को अनुभव करेंगे। और आपके भीतर जड़ता टूटनी शुरू हो जाएगी। एक समय आएगा आपके भीतर कोई जड़ता नहीं होगी और केवल चैतन्य रह जाएगा। जिस क्षण व्यक्ति पूर्ण मौन में स्थापित अपनी चेतना को प्रवेश करता है उसी क्षण उसके भीतर शरीर विलीन हो जाता है और केवल आत्मा का अनुभव शेष रह जाता है। जिस क्षण आप पूरे मौन में हैं उसी क्षण आप संसार में नहीं हैं परमात्मा में हैं। इसको मैं संन्यास कहता हूं। ऐसा व्यक्ति जो सारी भीड़ के बीच मौन है, संन्यासी है; ऐसा व्यक्ति जो सारे कामों के बीच मौन है, संन्यासी है; ऐसा व्यक्ति जो सब करते हुए मौन है, संन्यासी है। जिसके भीतर मौन है वह संन्यास को पा गया। क्योंकि मौन ही द्वार खोलता है परमात्मा के। मौन ही द्वार खोलता है अनंत चेतना के। मौन ही द्वार खोलता है पदार्थ के पार जो है उसके लिए। स्मरण रखें, जो भी साधने जैसी बात है, जो भी पाने जैसी बात है, जो भी उपलब्ध करने जैसी बात है, वह है साइलेंस, वह है मौन।
संसार चौबीस घंटे आपके भीतर मौन को तोड़ रहा है। आप खुद चौबीस घंटे अपने मौन को तोड़ रहे हैं। फिर चाहे आप शास्त्र पढ़ें, ग्रंथों को याद करें, तत्वज्ञान को स्मरण कर लें, वह भी सब आपके मौन को तोड़ रहा है। उससे भी आप मौन में नहीं जा रहे हैं। वह सब तत्वज्ञान भी आपके भीतर बातचीत बन रहा है। चुप हो जाएं। इससे बेहतर और कुछ भी नहीं है। और चुप्पी को अनुभव करें अपने भीतर। और उस घड़ी में जब आपके भीतर कोई भी नहीं बोलता होगा, जब निबिड़ सन्नाटा होगा, जैसे कोई दूर एकांत में, वन में सब शांत हो, कोई पक्षी भी न बोलता हो, वैसा जब निबिड़ सन्नाटा आपके भीतर होगा, तो आप अनुभव करेंगे, आप सामान्य व्यक्ति नहीं हैं, आप देह के घेरे में बंधे हुए व्यक्ति नहीं हैं, आपकी चेतना तब आकाश को छूने की सामर्थ्य को उपलब्ध हो जाती है। उस मौन में आपको दिखाई पड़ता है, अनुभव होता है, सुनाई पड़ता है, वह जो परमात्मा का है। इस मौन को ही मैं प्रार्थना कहता हूं, इस मौन को ही ध्यान कहता हूं, इस मौन को ही समाधि कहता हूं।
और इसे साधने के लिए किसी के पास सीखने जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि जो भी आप सीखेंगे वह आपके भीतर बातचीत बन जाएगा। इसे साधने के लिए किन्हीं ग्रंथों को पढ़ने की जरूरत नहीं है, और इसे साधने के लिए किन्हीं पहाड़ों पर जाने की जरूरत नहीं है, जहां हैं वहां ही स्मरणपूर्वक इतना ही ध्यान रखें कि मेरे भीतर व्यर्थ की बातचीत न चले। और जब भी व्यर्थ की बातचीत चले तब शांत होकर उसे देखें और कुछ न करें। और आप हैरान होंगे, अगर आप अपने भीतर चलती हुई बकवास को शांत होकर देखें तो आपके भीतर एक नये तत्व का अनुभव होगा, जो केवल देख रहा है। बातचीत चल रही है और वह दूर खड़ा है। और तब आपको यह अनुभव होगा कि चित्त बातचीत में लगा हुआ है लेकिन आत्मा अभी भी मौन है और शांत है।
वह जो देखने वाला तत्व है वह आपकी आत्मा है। वह निरंतर मौन में और निरंतर साइलेंस में है। उसका थोड़ा सा अनुभव जैसे-जैसे गहरा होगा, बातचीत गिरती जाएगी, बातचीत विलीन होती जाएगी, एक समय आएगा आपके भीतर कुछ भी विचार चलते हुए नहीं रह जाएंगे। और जब कोई विचार नहीं चलते हैं तो विचारशक्ति का जन्म होता है। और जब तक विचार चलते हैं तब तक विचारशक्ति का जन्म नहीं होता। जितने ज्यादा विचार हो जाएंगे, आप उतने ज्यादा विक्षिप्त हो जाएंगे। पागल के विचार ही विचार रह जाते हैं, विवेक बिल्कुल नहीं रह जाता। इसलिए दुनिया के बहुत बड़े-बड़े विचारक पागल होते देखे जाते हैं, वह इस बात का सबूत है कि विचारक सत्य को अनुभव नहीं कर सकता। और आज तक दुनिया में किसी विचारक ने सत्य को अनुभव नहीं किया है और न कभी कर सकेगा।
जब हम बुद्ध को, महावीर को विचारक कहते हैं तो हम गलती करते हैं। ये विचारक नहीं हैं। इन्होंने तो विचार को छोड़ दिया है। ये तो सब विचार को

छोड़ कर चुप हो गए हैं। ये द्रष्टा हैं। और जो द्रष्टा हो जाता है वह सब पा लेता है।
एक छोटी सी कहानी, अपनी चर्चा को मैं पूरा करूंगा।
उपनिषदों के समय में एक युवक सत्य की तलाश में गया। उसने अपने गुरु के चरणों में सिर रखा और उसने कहा कि मैं सत्य को पाने आया हूं। उसके गुरु ने कहाः सत्य को पाना चाहते हो या सत्य के संबंध में कुछ पाना चाहते हो? उसके गुरु ने कहाः सत्य को जानना चाहते हो या सत्य के संबंध में कुछ जानना चाहते हो? अगर सत्य के संबंध में कुछ जानना है तो फिर मेरे पास रुक जाओ और अगर सत्य को जानना है तो फिर मामला कठिन है। उस युवक ने कहाः मैं सत्य को जानने आया, संबंध में जानने को नहीं आया। संबंध में ही जानना होता तो मेरे पिता खुद बड़े पंडित थे। सभी शास्त्र वे जानते हैं। लेकिन जब मैंने उनसे कहा कि मैं सत्य को जानना चाहता हूं। तो उन्होंने कहाः मैं असमर्थ हूं, तू कहीं और खोज। मैं सत्य के संबंध में जानता हूं, मैं शास्त्रविद हूं, मुझे सत्य का कोई पता नहीं। तो मैं सत्य को ही जानने आया हूं। उसके गुरु ने कहाः तब ऐसा करो, इस आश्रम में जितने गाय-बैल हैं, कोई चार सौ के करीब हैं, इन सबको ले जाओ। दूर ऐसे जंगल में चले जाना जहां कोई आदमी न हो। और जब ये गाय-बैल हजार हो जाएं--इनके बच्चे होंगे और ये हजार हो जाएंगे, तब तुम लौट आना। और तब तक एक शर्त याद रखो, जो भी बात करनी हो, इन्हीं गाय-बैलों से कर लेना। जो भी बात करनी हो, इनसे ही कर लेना, किसी आदमी से मत बोलना। जो भी तुम्हारे दिल में आए, इन्हीं से कह लेना। और इतनी दूर चले जाना कि कोई आदमी न हो। और जब ये हजार हो जाएं तो वापस लौट आना।
वह युवक उन चार सौ गाय-बैलों को खदेड़ कर जंगल में गया। दूर से दूर गया जहां कोई भी नहीं था। तो वहां वे जानवर और वह अकेला रह गया। उनसे ही बात करनी पड़ती। जो भी कहना होता, उन्हीं से कहना होता। उनसे क्या कहता? उनसे क्या बात करता? उनकी आंखों में तो कोई विचार न थे। गाय की आंख कभी देखी है? जब आपकी भी आंख वैसी हो जाए तो समझना कि कहीं पहुंच गए। उस आंख में कोई विचार नहीं है, खाली और शून्य। उन आंखों में देखता, उन्हीं के पास रहता, उन्हीं को चराता, पानी पिलाता, अकेला उन्हीं के बीच सो जाता। वर्ष आए और गए। कुछ दिन तक पुरानी घर की स्मृतियां चलती रहीं। लेकिन नया भोजन न मिले तो पुरानी स्मृतियां मर जाती हैं। हम रोज नई स्मृतियों को भोजन दे देते हैं, इसलिए रिप्लेस होती चली जाती हैं। पुरानी मरती हैं नई भीतर पहुंच जाती हैं। अब नये का तो कोई कारण नहीं था। गाय-बैल थे, उनके बीच रहना था। कोई नई स्मृति का कारण न था। नई स्मृतियां पैदा न हुईं, पुराने को भोजन न मिला, वे क्रमशः मरती गईं। वह गाय-बैल के पास रहते-रहते खुद गाय-बैल हो गया। वह तो संख्या ही भूल गया। गुरु ने कहा था, हजार जब हो जाएं तो इनको लिवा लाना। लेकिन वह तो भूल ही गया कि हजार कब हुईं वे।
बड़ी मीठी कहानी है। उन गायों ने कहा कि हम हजार हो गए, वापस लौट चलो।
यह तो काल्पनिक ही होगा। लेकिन मतलब केवल इतना है कि उसे पता नहीं था कि कब गाय-बैल हजार हो गए। और जब गायों ने कहा, हम हजार हो गए, अब लौट चलो, तो वह वापस लौटा। गुरु ने दूर से देखा, वह हजार गाय-बैल का झुंड आता था और उसने अपने शिष्यों को कहाः देखो, एक हजार एक, एक हजार एक गाय-बैल आ रहे हैं। उसके शिष्य बोलेः एक हजार एक और बीच में वह जो युवा है? उसने कहाः उसकी आंखों में देखो। अब वह आदमी नहीं रहा। अब वह आदमी नहीं है। और जब वह करीब आया तो गुरु ने उसे गले लगा लिया और गुरु ने कहाः कहो मिल गया? वह युवक चुप रहा। उसने कहाः केवल आपके चरण छूने आया हूं। उसने गुरु के चरण छुए और वापस लौट गया। उस मौन में उसने जान लिया जो जानने जैसा था।
अब तक जो सदगुरु है वह मौन देता है और जो असदगुरु है वह शब्द देता है।
जो सदगुरु है वह आपके ग्रंथ छीन लेता है, जो असदगुरु है वह आपको ग्रंथ दे देता है। जो सदगुरु है वह आपके विचार अलग कर लेता है, जो असदगुरु है वह आपके भीतर विचार डाल देता है। यही होता रहा है। और अगर सत्य को जानना हो-- सत्य के संबंध में नहीं--तो मौन हो जाएं, चुप हो जाएं और चुप्पी को साधें, मौन को साधें। हमने स्मरणपूर्वक नहीं साधा इसलिए नहीं साध पाए हैं। साधेंगे, निश्चित ही साधा जा सकता है। क्यों? क्योंकि विचार को साधना ही

कठिन है, मौन तो हमारा स्वभाव है। अगर हमने थोड़ा सा भी प्रयास किया तो स्वभाव के झरने फूट पड़ेंगे, जड़ता टूट जाएगी, बह जाएगी और चैतन्य का प्रवाह हो जाएगा। और स्मरण रखें, जब चैतन्य का प्रवाह होता है तो सारा जीवन आमूल परिवर्तित हो जाता है। तब जो भी होता है वह शुभ है। तब कोई डिसिप्लिन, कोई अनुशासन ऊपर से नहीं लादना पड़ता, कोई चर्या ऊपर से नहीं लादनी पड़ती। जो भी होता है वह शुभ और सद्भ होता है।
चैतन्य की धारा को जड़ता से न रोकें। जीवन ऐसा है कि वह जड़ कर रहा है। आपको प्रयास करना होगा कि जीवन की जड़ता आप पर आरोपित न हो। अगर आप इस प्रयास में संलग्न हैं तो आप एक धार्मिक आदमी हैं। हिंदू, मुसलमान, ईसाई होने से आप धार्मिक नहीं हैं। जड़ता के विरोध में अगर अपने भीतर लड़ रहे हैं तो आप धार्मिक हैं और चैतन्य की आशा में, अपेक्षा में और प्रार्थना में अगर संघर्षशील हैं तो धार्मिक हैं। ईश्वर करे, आपको धार्मिक बनाए। आप तथाकथित धर्मों से मुक्त हों और धार्मिक बनें। आप तथाकथित मंदिर, शिवालय और मस्जिदों से मुक्त हों और धार्मिक बनें। इस दुनिया में अगर धार्मिक आदमी का अवतरण हो जाए तो हम मनुष्य को बचाने में सफल हो जाएंगे। अन्यथा थोड़े ही दिनों में सारे मशीन, मशीनें ही मशीनें दिखाई पड़ेंगी, कोई आदमी कहीं दिखाई नहीं पड़ेगा। आदमी मर रहा है और मशीनें जीती जा रही हैं। धीरे- धीरे हम सब मशीनों की भांति हो जाएंगे। और यह सबसे बड़ी दुर्घटना होगी। एटम बम या हाइड्रोजन बम इतनी बड़ी दुर्घटनाएं नहीं हैं। अगर वे गिर जाएं तो कोई हर्जा नहीं है उतना। लेकिन अगर सारे मनुष्य जड़ मशीनों की भांति हो गए तो सब समाप्त हो जाएगा। प्रेम और सौंदर्य और सत्य और शुभ, सब विलीन हो जाएंगे। इन सबका जन्म चैतन्य के विकास से होता है।
जड़ता को न आने दें अपने भीतर और चैतन्य को विकसित करें। चैतन्य के विकास का नियम है--मौन को, शून्य को, ध्यान को, जागरूकता को अपने भीतर जो जितना विकसित करता है वह उतना मौन को उपलब्ध हो जाता है। परमात्मा आपके सब शब्द छीन ले, परमात्मा आपके सब विचार छीन ले, परमात्मा आपको निपट मौन कर दे, निरीह कर दे, आपको एकदम दरिद्र कर दे, आपकी आत्मा एकदम गरीब हो जाए विचारों से, तो आप एकदम समृद्ध हो जाएंगे और आपको अनंत संपत्ति के द्वार उपलब्ध हो जाएंगे। यही प्रार्थना करता हूं।

मेरी बातों को इतनी गर्मी में बैठ कर सुना इतने प्रेम से, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य का अन्वेषण
चौथा प्रवचन

स्वयं का सत्य

मेरे प्रिय आत्मन्!
बोलते समय, बोलने के पहले मुझे यह सोच उठता है हमेशा, किसान सोच लेता
है कि जिस जमीन पर हम बीज फेंक रहे हैं उस जमीन पर बीज अंकुरित होंगे या नहीं? बोलने के पहले मुझे भी लगता है, जिनसे कह रहा हूं वे सुन भी सकेंगे या नहीं? उनके हृदय तक बात पहुंचेगी या नहीं पहुंचेगी? उनके भीतर कोई बीज अंकुरित हो सकेगा या नहीं हो सकेगा? और जब इस तरह सोचता हूं तो बहुत निराशा मालूम होती है। निराशा इसलिए मालूम होती है कि विचार केवल उनके हृदय में बीज बन पाते हैं जिनके पास प्यास हो और केवल उनके हृदय सुनने में समर्थ हो पाते हैं जिनके भीतर गहरी अभीप्सा हो। अन्यथा हम सुनते हुए मालूम होते हैं, लेकिन सुन नहीं पाते। अन्यथा हमारे हृदय पर विचार जाते हुए मालूम पड़ते हैं, लेकिन पहुंच नहीं पाते और उनमें कभी अंकुरण नहीं होता है।
प्यास के बिना कोई भी सुनना संभव नहीं है। इसलिए जरूरी नहीं है कि जितने लोग बैठे हैं वे सभी सुनेंगे। यह भी जरूरी नहीं है कि उन तक मेरी बात पहुंचेगी। लेकिन इस आशा में कि शायद किसी के पास पहुंच जाएगी, तो भी ठीक है। अगर एक के पास भी बात पहुंच जाए तो परिणाम, तो परिणाम होगा, निश्चित होगा।
पर मैं आशा करूं कि सबके पास पहुंच सकेगी और यह विश्वास करूं कि सब प्यास लेकर इकट्ठे हुए होंगे। हुआ ऐसा है कि दुनिया में प्यास सत्य के लिए, परमात्मा के लिए कम होती जा रही है। सत्य के लिए हमारी अभीप्सा कम होती जा रही है। यह मैं क्यों कह रहा हूं? यह मैं इसलिए कह रहा हूं, धर्म के लिए हमारी प्यास कम होती जा रही है। यह मैं क्यों कह रहा हूं? यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि अगर आपकी धर्म के लिए प्यास हो, तो आप किसी धर्म के सदस्य नहीं हो सकते हैं। अगर आपकी धर्म के लिए प्यास हो, तो आप हिंदू, जैन, मुसलमान और ईसाई नहीं हो सकते हैं।
जिसके भीतर प्यास होगी, वह खोज करेगा, वह साहस करेगा, अनुसंधान करेगा,
वह साधना करेगा और सत्य तक पहुंचने के लिए संघर्ष करेगा। जिनके भीतर प्यास नहीं होती, वे मां-बाप जो विचार दे देते हैं, उन्हें स्वीकार कर लेते हैं और उनको ढोते रहते हैं। जिनका धर्म जन्म से निश्चित होता है, जानना चाहिए उन्हें धर्म की कोई प्यास नहीं है। अन्यथा हम दूसरों के दिए भोजन से तृप्त नहीं होते और हम दूसरों के पहने हुए कपड़े पहनने को राजी नहीं होते। लेकिन हम, दूसरों के उधार विचार स्वीकार कर लेते हैं और हम परंपरा से सहमत हो जाते हैं। और जन्म का आकस्मिक संयोग हमें जिस घर में पैदा कर देता है हम उस धर्म को अंगीकार कर लेते हैं। ये हमारे भीतर बुझी हुई प्यास के लक्षण हैं।
जिनके भीतर परंपरा के प्रति संदेह नहीं उठता, जिनके प्रति प्रचलित धारणाओं और मान्यताओं के प्रति जिज्ञासा और प्रश्न खड़े नहीं होते हैं, उनके भीतर कोई प्यास नहीं है। अगर उनके भीतर प्यास हो, तो प्यास की अग्नि उन्हें विद्रोह में ले जाएगी।
धर्म बुनियादी रूप से या सत्य या धर्म और सत्य की खोज एक विद्रोह है।
वह एसेंसियली रिबेलियस है। तो आपके भीतर अगर विद्रोह पैदा नहीं होता है और आप चुपचाप सब कुछ स्वीकार कर लेते हैं, जो परंपरा ने और अतीत ने आपको दिया है, आप कभी धार्मिक नहीं हो सकते हैं। महावीर ने वह स्वीकार नहीं किया जो उन्हें दिया गया था और न बुद्ध ने स्वीकार किया और न क्राइस्ट ने स्वीकार किया। दुनिया में जो भी लोग सत्य को उपलब्ध हुए हैं, उन्होंने परंपरा से दिए गए सत्यों को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहाः हम खोजेंगे, हम जानेंगे, हम पहचानेंगे, हम अनुभूति करेंगे तो स्वीकार करेंगे। अनुभूति के पहले जो स्वीकार करने को तैयार है, उसकी प्यास झूठी है। और भी प्यास इसलिए झूठी मालूम होती है, अगर कोई आदमी कहे कि मुझे बहुत

प्यास लगी है और पानी शब्द से ही तृप्त हो जाए, तो हम क्या कहेंगे? हम कहेंगे, प्यास नहीं है। हम आत्मा, परमात्मा और इन सारे शब्दों से तृप्त हो जाते हैं। इसका अर्थ है, हमारे भीतर कोई जलती हुई प्यास नहीं है, अन्यथा प्यास हो तो पानी चाहिए।
पानी शब्द से कोई कैसे तृप्त होगा? लेकिन मैं देखता हूं, जो धार्मिक दिखाई पड़ते हैं, वे शास्त्रों को पढ़ते हैं और तृप्त हो जाते हैं। यह प्यास जरूर झूठी है। शास्त्र जिसकी प्यास को बुझा देते हों वह प्यास सच्ची नहीं हो सकती, क्योंकि शास्त्र में सिवाय शब्दों के और क्या है? शास्त्र में सिवाय शब्दों के और कुछ भी नहीं है। सत्य तो मेरे और आपके भीतर है। सत्य तो जगतसत्ता के भीतर है। जो अपने भीतर और जगतसत्ता के भीतर प्रवेश नहीं करेगा, वह सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता। इसलिए जिसकी प्यास गहरी होती है, इसलिए जिसकी अभीप्सा तीव्र होती है, वह सहमत नहीं होता। वह किसी मान्यता से बंधता नहीं, सारी मान्यताओं को तोड़ देता है। और जब कोई मनुष्य सारी मान्यताओं को, सारी धारणाओं को तोड़ देता है, तो उसके भीतर एक इतनी घबड़ाहट, इतनी बेचैनी, इतनी अशांति, इतने असंतोष का जन्म होता है कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। और जब वैसा असंतोष भीतर पैदा हो जाए और भीतर लपटें जलने लगें खोज के लिए, जीवन के लिए, तभी कोई व्यक्ति सामान्य जीवन चेतना से ऊपर उठ कर परम जीवन चेतना से संबंधित हो पाता है।
इसलिए अगर किसी ने कहा हो कि धर्म संतोष है, तो मैं कहना चाहता हूं, गलत है वह बात। धर्म बहुत गहरा असंतोष है। इसलिए अगर कोई सिखाता हो कि धार्मिक आदमी वह है जो संतुष्ट है, तो मैं कहूंगा, बिल्कुल ही, बिल्कुल ही गलत बात है। धार्मिक आदमी वह है जो सबसे असंतुष्ट है, जिसे कुछ भी संतुष्ट नहीं कर पाता है। और जब असंतोष तीव्र होता है, तो उस तीव्र असंतोष की ज्वाला में ही उसकी चेतना ऊपर उठनी शुरू होती है।
आरोहण गहरे असंतोष से शुरू होता है। पता नहीं आपके भीतर ऐसी प्यास और ऐसा असंतोष है या नहीं। लेकिन ईश्वर से मैं कामना करूंगा कि ऐसी प्यास पैदा हो। और अपने जन्म की बातों और विचारों से मुक्त हो जाएं। क्योंकि जो उनसे ही सहमत रहेगा, वह उनसे ही सहमत मर जाएगा; उसकी अपनी कोई अनुभूति नहीं हो सकती है। कृपा करें, परंपरा को दूर हटा दें। जो दूसरों ने दिया है उसे अलग रख दें और पूछें अपने से कि मेरी उपलब्धि क्या है? अनुभूति के जगत में आपकी अपनी उपलब्धि क्या है?
मैंने सुना है, एक संन्यासी बहुत दिन तक अपने गुरु के आश्रम पर था। बहुत दिन उसने अपने गुरु की बातें सुनीं। लेकिन उसकी बातें सुन कर उसे ऐसा लगने लगा यह तो वही-वही बातें रोज-रोज दोहरा देता है। कहीं और जाऊं और खोजूं। और जब उसके मन में यह संकल्प घना हो रहा था कि मैं कहीं और जाऊं और खोजूं, तभी एक और संन्यासी का आगमन उस आश्रम में हुआ। उस संन्यासी ने आते से ही इतनी सूक्ष्म और बारीक बातें कीं, इतनी तत्वचिंतन, इतने तत्व की गहरी-गहरी बातों का ऊहापोह किया कि उस युवा संन्यासी, जो आश्रम छोड़ने को था, उसके मन में हुआ कि अगर कोई गुरु हो तो ऐसा होना चाहिए। और उसके मन में हुआ कि मेरा जो बूढ़ा गुरु है, वह ये बातें सुन कर कैसा संकोच, कैसी हीनता और कैसी दीनता नहीं अनुभव करता होगा?
कोई दो घंटे तक आगंतुक संन्यासी ने अपनी बातें समझाईं और जब वह अपनी बातें समझा चुका, तो उसने अभिमान से सबकी तरफ देखा कि कैसा लगा? लोगों को कैसा लग रहा है? उसने उस बूढ़े संन्यासी की तरफ देखा, जिसका कि आश्रम था। वह बूढ़ा संन्यासी हंसने लगा, और उसने जो कहा वह मन में रख लेने जैसा है। उसने कहाः मेरे मित्र, मैं दो घंटे तक संपूर्ण हृदय से तल्लीन होकर सुनता रहा कि तुम कुछ बोलो, लेकिन तुम तो कुछ बोलते नहीं। वह संन्यासी हैरान हुआ। उसने कहाः आप पागल हैं, मैं दो घंटे तक बोलता ही था और क्या करता था। उस बूढ़े संन्यासी ने कहा कि तुम बोले, यह मैं सुनता रहा, लेकिन तुम नहीं बोलते, तुम्हारे भीतर से दूसरे बोल रहे हैं--शास्त्र बोले रहे हैं, संस्कार बोल रहे हैं, परंपरा बोल रही है, समाज बोल रहा है, लेकिन तुम नहीं बोल रहे।

और निश्चित ही अपने भीतर खोजें कि जो भी आपको प्रतीत होती हैं बातें,
जो आपको सत्य मालूम होती हैं अनुभूतियां, वे आपकी हैं या दूसरे लोग बोल रहे हैं? और उस आदमी से दरिद्र आदमी इस जमीन पर कोई भी नहीं है जिसके भीतर अपना कोई स्वर न हो, सब स्वर पराए हों। और उस आदमी से कमजोर और दीन-हीन आदमी कोई भी नहीं है, जिसके पास अपनी कोई अनुभूति न हो, सब अनुभूतियां दूसरों की हों। ऐसा आदमी केवल एक प्रतिध्वनि मात्र है जिसमें दूसरों की आवाजें गूंज रही हैं और प्रतिध्वनित हो रही हैं।
इस पर मैं बोल रहा हूं, इस यंत्र पर मैं बोल रहा हूं, यह मेरी आवाज को प्रतिध्वनित कर रहा है। क्या आपको खयाल नहीं आता कि आपके भीतर भी महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट और मोहम्मद की आवाजें प्रतिध्वनित हो रही हैं? क्या आपकी अपनी कोई आवाज है? क्या आपकी अपनी कोई ध्वनि है? अगर सब प्रतिध्वनियां हैं, तो आप कोरे हैं और खाली हैं और आप मुर्दा हैं और आप जीवित नहीं हैं। आपकी अपनी कोई अनुभूति ही आपको जीवन दे सकेगी। न कोई शास्त्र जीवन देता है, न कोई गुरु जीवन देता है, अपनी अनुभूति ही जीवन देती है। और जिसके पास जितनी ज्यादा अनुभूतियां हों, वह उतना ही समृद्ध, वह उतना ही धनी, वह उतना ही संपदाशाली हो जाता है। लेकिन हम किसी ऐसी संपदा की तलाश में नहीं हैं, हम तो उस संपदा की तलाश में हैं जिससे बड़े मकान बनते हैं, बड़ा यश बनता है, बड़े भवन बनते हैं, बड़े पद उपलब्ध होते हैं, हम उस संपदा की तलाश में हैं। हम क्षुद्र संपदा को तो खुद खोजते हैं, लेकिन विराट संपदा को दूसरों की मान लेते हैं। क्या यह इस बात की सूचना नहीं है कि विराट संपदा की हमें प्यास ही नहीं है?
हम यह नहीं मानते कि महावीर और बुद्ध के पास बहुत संपत्ति थी, तो हमें क्या करना है संपत्ति से? हम अपनी संपत्ति खोजते हैं। लेकिन जब सत्य का सवाल उठता है, तो हम कहते हैं, महावीर, बुद्ध; गीता और कुरान और बाइबिल; और हम कहते हैं, सत्य उनमें है। जब सत्य का सवाल उठता है, तो हम दूसरों के सत्य को मान लेते हैं और जब संपत्ति का सवाल उठता है, तो हम अपनी संपत्ति खोजते हैं। इससे ज्यादा बेईमानी और कोई मनुष्य अपने साथ दूसरी नहीं कर सकता है। अगर संपत्ति अपनी खोजनी है, क्षुद्र संपत्ति अपनी खोजनी है, तो विराट और सत्य की संपत्ति भी अपनी ही खोजनी होगी। और यह खोज शुरू हो सके, इसके पहले यह समझना होगा कि मेरे पास कुछ है।
मैं देश के कोने-कोने में घूमा। न मालूम कितने-कितने तत्वज्ञानियों
को देखा और सुना और मैंने पाया, उन सबसे शास्त्र बोल रहे हैं, उनके पास अपना कुछ नहीं है। उनसे बड़ी-बड़ी तात्विक बातें निकल रहीं हैं, लेकिन सब झूठी हैं, क्योंकि जो दूसरे से ली गई हैं उनकी सच्चाई उस दूसरे आदमी के साथ रही होगी, वह आपके साथ नहीं है। जिसकी आप प्रतिधुन कर रहे हैं, जिसे आप केवल प्रतिध्वनित कर रहे हैं, वह सत्य आपके लिए सत्य नहीं हो सकता। सत्य तभी सत्य होता है वह जब मेरी अनुभूति हो, जब वह दूसरे की अनुभूति हो तो असत्य हो जाता है। और यही वजह है कि सारे धर्म, जब उन्हें जन्म मिलता है तो जीवित होते हैं। वे उस आदमी के साथ जीवित रहते हैं जिसके पास सत्य था और उसके हटते ही मुर्दा होने शुरू हो जाते हैं, और फिर लाशें रह जाती हैं। और फिर लकीरें रह जाती हैं मुर्दा, जिन्हें हम पीटते रहते हैं। दुनिया इस तरह के मुर्दा धर्मों से परेशान हो गई है। ये सब मरे हुए धर्म हैं। ये मरे हुए इसलिए हैं कि इनको मानने वाले के पास अपना सत्य नहीं है।
अपना सत्य सबसे बड़ी बात है। और मैं आपको कहूं, वही सबसे बड़ी संपत्ति
भी है। और जो ऐसे किसी सत्य को स्वयं उपलब्ध नहीं होता है वह आज नहीं कल पछताएगा। और तब उसे दिखाई पड़ेगा कि उसकी खोज किए गए पद, उसकी इकट्ठी की गई संपदाएं, सब व्यर्थ हो गई हैं। मृत्यु सब छीन लेती है, केवल सत्य को छोड़ कर। मृत्यु सब छीन लेती है, केवल सत्य को छोड़ कर। और हम ऐसे पागल हैं कि जीवन भर में हम शेष सब खोजते हैं, केवल सत्य को छोड़ कर।
मैंने सुना है, और मुझे प्रीतिकर रहा, और मैंने जगह-जगह लोगों को कहा। नानक एक गांव से निकले थे और उस गांव में एक रात वे रुके। उस गांव में जो बहुत समृद्ध और धनी-मानी व्यक्ति था, उसने आकर उनके चरणों कहा कि मेरी संपत्ति ले लें, और इस सारी संपत्ति को किसी अच्छे काम में लगा दें, आपसे

अच्छा आदमी और कौन मिलेगा? आप इशारा करें और मैं करूं। जो आज्ञा देंगे वह पूरा कर दूंगा। नानक ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और नानक नीचे ही देखते रहे गए, उस आदमी ने पूछा, आप कहते क्यों नहीं? नानक ने कहाः मुझे तुम्हारे पास कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। तुम बिल्कुल दरिद्र आदमी मालूम होते हो। उस आदमी ने कहाः मेरे कपड़ों को देख कर भूल में न पड़ें, मैं सीधा-सादा आदमी हूं इसलिए मेरी संपत्ति का पता नहीं चलता, अन्यथा इस इलाके में मेरे से ज्यादा संपत्ति और किसी के पास नहीं है। नानक ने कहाः मुझे तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता कि तुम्हारे पास कुछ भी हो। मुझे बहुत दरिद्र लोग मिले हैं, लेकिन तुम दरिद्रतम हो। फिर तुम नहीं मानते तो एक छोटा सा काम कर दो। अगर वह काम कर सके तो फिर और बड़े काम बताऊंगा, परीक्षा हो लेगी। और उसने कहा, आज्ञा दें और मैं कर दूंगा, चाहे मेरी समग्र संपत्ति क्यों न लग जाए।
नानक ने अपने कपड़े से एक सुई निकाली। कपड़े सीने की सुई और उस आदमी को कहाः इसे रख लो और जब हम और तुम दोनों मर जाएं तो इसे वापस लौटा देना। उस आदमी ने देखा कि जरूर आदमी पागल है। मैं गलत आदमी के पास आ गया। पहले तो उसने कहा कि दरिद्र हो तुम। और अब वह कह रहा कि यह सुई जब हम दोनों मर जाएं तो वापस लौटा देना। फिर भी एकदम से अभी वापस करूं, अभी मैंने कहा था जो कहेंगे कर दूंगा, ठीक नहीं मालूम होगा, वह सुई लेकर वापस चला गया। उसने मित्रों से सलाह ली। उसने रात भर सोचा। उसकी कुछ समझ नहीं पड़ा, कोई रास्ता नहीं मिला। उसने सब तरह से मुट्ठी बांधने की कोशिश की उस सुई के ऊपर, लेकिन सब मुट्ठियां इसी पार रह जाती हैं। उसने सब भांति सुई को ले जाने के विचार किए, लेकिन विचार यहीं रह जाते हैं। कोई पकड़ मृत्यु के भीतर नहीं जा सकती। सुबह-सुबह जल्दी वह आया और उसने नानक के पैर छुए और कहा कि इससे पहले
कि लोग आ जाएं, मैं अपनी दरिद्रता स्वीकार कर लूं, यह सुई आप वापस ले लें। कहीं ऐसा न हो कि मैं मर जाऊं और सुई वापस न कर सकूं, एक ऋण मेरे ऊपर रह जाए। इसे मैं मरने के बाद वापस नहीं लौटा सकूंगा इसलिए जिंदगी में लौटा रहा हूं। नानक ने कहाः जिस चीज को मरने के पीछे न ले जा सको, उसे जिंदगी में इकट्ठा करने की भूल में मत पड़ना। और जिसे जिंदगी में लौटाने का खयाल आता है क्योंकि मृत्यु के बाद नहीं लौटा सकेंगे, उस सबको लौटा दो जिंदगी को, वापस उसे इकट्ठा मत करो। सुई ही मुझे मत लौटाओ, सब लौटा दो जो-जो इकट्ठा हो जो कि मृत्यु के पार न जा सके।
असल में हम समृद्धि के थोथे, झूठे रूप में अपने भीतर की दरिद्रता छिपा लेते हैं। जितना गरीब आदमी होगा, उतनी संपत्ति की उसे आकांक्षा होती है और जितना नीचा आदमी होगा, उतने बड़े पद पर होने की उसकी मंशा होती है। जो बहुत बड़े पद पर होते हैं, वे बहुत साधारणहीन लोग होते हैं। अपनी हीनता भुलाने को बड़े पदों को खोजते हैं। और जो बहुत संपत्ति को खोज लेते हैं, वे बहुत दरिद्र लोग होते हैं। अपनी दरिद्रता छिपाने को संपत्ति का आवरण इकट्ठा कर लेते हैं। इसलिए दुनिया में जो दरिद्र है वह संपत्तिशाली दिखाई पड़ता है और जो बहुत दीन-हीन है वह बड़े पदों पर अनुभव होता है।
क्राइस्ट ने कहा हैः धन्य हैं वे लोग जो अंतिम हो सकते हैं। क्राइस्ट
ने कहा हैः धन्य हैं वे लोग जो अंतिम हो सकते हैं; क्योंकि जरूर उनमें प्रथम होने की क्षमता है। धन्य हैं वे लोग जो दरिद्र हो सकते हैं; क्योंकि निश्चय इस बात की उनकी दरिद्रता सूचना है कि वे दरिद्र नहीं हैं, इसलिए उन्हें कोई संपत्ति से अपनी दरिद्रता छिपाने का कोई कारण नहीं है। धन्य हैं वे लोग जो निम्न हो सकते हैं; क्योंकि उन्हें ऊंचे उठने का कोई खयाल पैदा नहीं होता, क्योंकि उनके भीतर कोई नीचा है ही नहीं, जिससे ऊपर उठने का खयाल पैदा होता हो।
इसलिए इस दुनिया में समृद्ध दरिद्र देखे जाते हैं और दरिद्र समृद्ध देखे जाते हैं। और भिखारी हुए हैं जो सम्राट थे और सम्राट हुए हैं जो कि भिखारी थे।
नानक ने उस सुबह उससे कहा, कि फिर सोचो, तुम्हारे पास क्या है? नानक ने उससे कहा, मैं उस चीज को विपत्ति कहता हूं जो मृत्यु के पार न जा सके, उसे संपत्ति कहता हूं जो मृत्यु के पार चली जाए।

मैं भी आपसे यह कहूं, वही संपत्ति है जो मृत्यु के पार चली जाए। और ऐसी संपत्ति केवल सत्य की है और कोई संपत्ति नहीं है। और कोई संपत्ति नहीं है जिसे मृत्यु की लपटें नष्ट न कर देंगी। एक ही संपत्ति है, सत्य की, और वह आपकी उधार है, वह आपकी दूसरों से ली हुई है। वह आपकी महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट से मिली हुई है। वह आपने गीता, कुरान और बाइबिल से ली हुई है। वह संपत्ति आपकी नहीं है जो कि संपत्ति है। और जिसे आप संपत्ति समझ रहे हैं, वह बिल्कुल आपकी न है और न हो सकती है। उसे आपको छोड़ ही देना होगा। जिसे छोड़ देना होगा उसे इकट्ठा कर रहे हैं और जो साथ हो सकती है उसे अपने से दूर रख रहे हैं और बड़े-बड़े नामों का सहारा ले रहे हैं। स्मरण रखें, सत्य आपका हो तो ही आपका हो सकता है। इसलिए समाज और परंपरा और शिक्षा आपको जो देती है उसे सत्य मत मान लेना।
मैं एक गांव में गया। वहां एक अनाथालय में मुझे दिखाने ले गए। वहां उन्होंने कहा कि हम छोटे-छोटे बच्चों को धर्म की शिक्षा देते हैं। मैं हैरान हुआ। क्योंकि मेरी बुद्धि कुछ गड़बड़ है और मुझे ऐसा लगता है कि धर्म की कोई शिक्षा हो नहीं सकती। और जब भी कोई शिक्षा होगी तो धर्म के नाम पर किसी न किसी गलत चीज की होगी। असल में धर्म की साधना होती है, शिक्षा होती ही नहीं है।
मैंने कहा कि मैं हैरान हूं, धर्म की शिक्षा कैसे होगी? फिर मैं देखूं क्या शिक्षा देते हैं?
उन्होंने कहाः आप इन बच्चों से कुछ भी पूछें, इनको सब उत्तर मालूम हैं।
मैंने कहाः आप ही पूछें तो मैं सुनूं, क्योंकि मुझे यह भी ठीक पता नहीं कि कौन सा प्रश्न है जो धार्मिक है? क्योंकि जितने प्रश्न धर्म की किताबों में लिखा दिखाई पड़ते हैं, वे सब मुझे थोथे मालूम होते हैं, वे कोई भी प्रश्न मुझे धार्मिक नहीं मालूम होते हैं। और उनके उत्तर तो उनसे भी ज्यादा थोथे होते हैं। मैंने कहाः आप ही पूछें। तो उन्होंने पूछा लड़कों से, आत्मा कहां हैं? उन सारे लड़कों ने छाती पर हाथ रखे, उन्होंने कहा-- यहां।
मैंने एक लड़के से पूछाः यहां तुम कह रहे हो, क्या मतलब है तुम्हारा?
उसने कहाः हमें बताया गया है कि आत्मा हृदय में है।
और मैंने कहाः हृदय कहां है?
वह लड़का बोलाः यह हमें बताया नहीं गया।
मैंने उनको कहा कि इन बच्चों के साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं, अन्याय
कर रहे हैं। इन्हें एक बात सीखा रहे हैं कि आत्मा यहां है, ये सीख लेंगे और जब भी जीवन में इनके सामने प्रश्न खड़ा होगा, आत्मा कहां है? यह हाथ यांत्रिक रूप से छाती पर चला जाएगा और कहेगा, यहां। यह उत्तर बिल्कुल झूठा होगा, यह दूसरों ने सिखाया है। इस उत्तर के कारण इनका प्रश्न दब जाएगा और इनके भीतर जिज्ञासा पैदा नहीं हो सकेगी जो कि आत्मा की खोज में ले जाती है। इनके लिए उत्तर दे दिया रेडीमेड, बना-बनाया। ये उसे स्वीकार कर लिए-- बालपन में, अबोध चित्त की अवस्था में। जब कुछ सोच-समझ और विवेक जाग्रत नहीं है तभी दुनिया के सारे धार्मिक लोग उन निरीह निर्दोष बच्चों के मन में अपनी शिक्षा को डाल देना चाहते हैं। इससे बड़ा और कोई अनाचार और कोई बड़ा पाप नहीं है, न हो सकता है। क्योंकि उनके दिमाग में जो बातें आपने भर दी हैं, वे जीवन भर उन्हीं को प्रतिध्वनित करते रहेंगे और इस भ्रम में रहेंगे कि उन्हें ज्ञान उपलब्ध हो गया है। जब कि ज्ञान उन्हें उपलब्ध नहीं हुआ। उन्होंने कुछ बातें और कुछ शब्द सीख लिए हैं। आप भी शब्द सीखे हुए होंगे। खयाल करके देखना कि किसी के सिखाए हुए शब्द हैं या यह अपनी अनुभूति है? और अगर ऐसा मालूम पड़े कि दूसरों के सिखाए हुए शब्द हैं, तो कृपा करना उन्हें छोड़ देना और भूल जाना।
इसके पहले कि कोई सत्य को उपलब्ध हो सके, सत्य के संबंध में जो भी सीखा
है उसे भूल जाना अत्यंत अपरिहार्य और अनिवार्य है। सत्य के संबंध में जो भी जानते हैं, उसे भूल जाना जरूरी है, अगर सत्य को जानना है। अगर परमात्मा को जानना है, तो परमात्मा के संबंध में जो भी जानते हैं, कृपा करें उसे छोड़

दें। वह कचरे से ज्यादा नहीं है जो आपके मन को घेरे हुए है। और मन अगर सारे कचरे से मुक्त हो जाए जो हमें सिखाया गया है, तो उसका जन्म होगा जो ज्ञान है। ज्ञान सिखाया नहीं जाता, वह हमारा स्वरूप है। जो सिखाया जाता है वह कभी ज्ञान नहीं हो सकता। जो बाहर से भीतर डाला जाता है वह कभी ज्ञान नहीं होता। जो भीतर से बाहर आता है वह ज्ञान होता है।
अगर ज्ञान हमारा स्वरूप है, अगर वह हमारी अंतर्निहित क्षमता है, तो वह बाहर से नहीं डाली जाएगी, वह भीतर से आएगी। और भीतर से आने में वह सब जो बाहर से डाला गया है बाधा हो जाता है।
एक तो हौज में पानी भर देते हैं ऊपर से, वह भी पानी है। पंडित के मस्तिष्क में जो ज्ञान भरा होता है, वह हौज के पानी की तरह है। और एक कुएं में भी पानी के जलस्रोत निकलते हैं, वह भी पानी है। लेकिन ज्ञानी का जो ज्ञान होता है, वह कुएं की भांति होता है। उसमें पानी ऊपर से नहीं डाला जाता, मिट्टी, कंकड़, पत्थर बाहर निकाले जाते हैं और पानी नीचे पाया जाता है। और पंडित का जो ज्ञान होता है, उसमें ऊपर से पानी डाला जाता है, निकाला कुछ भी नहीं जाता। तो जो-जो ज्ञान आपके ऊपर से डाला जाता है, वह हौज की तरह आपके भीतर भर जाएगा, वह कोई वास्तविक बात नहीं है। आपके जलस्रोत नहीं उससे खुलते हैं और भरा हुआ पानी जल्दी ही गंदा हो जाता है। इसलिए पंडित के मस्तिष्क से ज्यादा गंदा मस्तिष्क जमीन पर दूसरा नहीं होता। इसलिए पंडित सारी दुनिया में उपद्रव की जड़, झगड़ों-फसादों की बुनियाद है। दुनिया में पंडितों ने जितना उपद्रव करवाया है उतना बुरे लोगों ने बिल्कुल नहीं करवाया। लेकिन बुरे लोग अपराधियों की तरह बंद हैं और पंडित पूजे जा रहे हैं। दुनिया में जितनी खून-खराबी हुई है, मनुष्य के साथ जितने अत्याचार हुए हैं, मनुष्य और मनुष्य के बीच जितनी दीवालें खड़ी की हैं, वह पंडित ने खड़ी की हैं, लेकिन वे अपराधी नहीं हैं, वे पूज्य हैं, वे समाद्रित हो रहे हैं। जरा मनुष्य के इतिहास को उठा कर देखें, उसमें जितने खून के धब्बे हैं, उसमें निन्यानबे पंडित के पास पड़ेंगे, एक प्रतिशत अपराधियों के पास जाएगा।
दुनिया में मनुष्य और मनुष्य के बीच जितनी भी खाइयां और लड़ाइयां और उपद्रव खड़े किए गए हैं, वे पंडित ने खड़े किए हैं। और मैं मानता हूं इसके पीछे कारण हैं, जो भी पानी ऊपर से भर दिया जाता है वह गंदा हो जाता है, उसमें कोई जीवित स्रोत नहीं होते हैं। तो पंडित चाहे वह किसी धर्म का हो, उसके भीतर बाहर से भरा हुआ ज्ञान धीरे-धीरे गंदगी और सड़न पैदा कर देता है और वह सड़न फिर नये-नये रूपों में निकलनी शुरू हो जाती है। घृणा और विद्वेष फैलाने का कारण हो जाती है। मनुष्य को मनुष्य से तोड़ने का कारण हो जाती है। ज्ञान तो वास्तविक भीतर से आता है, बाहर से नहीं आता। और वह तभी आएगा जब बाहर के ज्ञान को हम अलग कर दें, क्योंकि वह कंकड़-पत्थर की तरह भीतर के ज्ञान को दबा लेता है। जो भी हमने बाहर से सीख लिया है, वह हमारे आत्म के जागरण में बाधा है। अगर हम बाहर से सीखे हुए को बाहर वापस लौटा दें, तो वह जाग जाएगा जो हमारे भीतर है और निरंतर मौजूद है। उसकी स्फुरणा हो जाएगी। सत्य को खोजने कहीं जाना नहीं है, जो-जो असत्य हमने सीख लिया है उसे अलग कर देना है और सत्य हमारे भीतर होगा। परमात्मा को खोजने कहीं जाना नहीं है, जो-जो हमने अपने ऊपर आवरण डाल लिए हैं वे अलग कर देने हैं और परमात्मा उपलब्ध हो जाएगा।
एक रात, एक बहुत सर्द रात को एक पहाड़ के पास एक छोटे से मंदिर में एक आदमी ने जाकर दस्तक दी। आधी रात होने को थी और बहुत ठंडी रात थी, अंदर से पूछा गया, कौन है इतनी रात को? सुबह आओ। उस आदमी ने कहाः मैं बहुत पापी हूं, मैं बहुत बुरा आदमी हूं। मैंने बहुत बार सोचा कि दिन में आपके पास आऊं, लेकिन वहां और बहुत से लोग होते हैं, इसलिए मैं रात को आया हूं। वह मंदिर एक साधु का था। दरवाजा खोला गया। वह साधु अंतिम सोने की तैयारी कर रहा था। उसकी सिगड़ी की आग भी बुझ गई थी और राख ही राख थी। उसने उससे पूछा कि तुमने यह कैसे कहा कि तुम पापी हो? जरूर किसी पंडित ने तुम्हें समझाया होगा कि तुम पापी हो। क्योंकि पंडित का एक ही काम है कि वह दुनिया में लोगों को समझाए की वे पापी हैं। और मेरी दृष्टि में किसी को यह समझा देना कि तुम

पापी हो, इससे बड़ा कोई पाप नहीं हो सकता है, क्योंकि उसके पापी होने की बुनियाद रख दी गई है।
ज्ञानी समझाता है, तुम परमात्मा हो। पंडित समझाता है, तुम पापी हो। ज्ञानी कहता है, तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है और पंडित कहता है, तुम्हारे भीतर पाप ही पाप है। उस साधु ने कहा कि जरूर किसी पंडित से तुम्हारा मिलना हो गया है, किसने तुम्हें कहा कि तुम पापी हो? मैं तो देखता हूं तुम परमात्मा हो। उस आदमी की आंखें नीचे झुकी थीं, उसने ऊपर उठाईं, यह पहली दफा कोई आदमी मिला था जिसने कहा कि तुम परमात्मा हो। उसने कहाः लेकिन मैं चोरी करता हूं। लेकिन मैं दूसरों की संपत्ति पर बुरी नजर डालता हूं। लेकिन मेरे मन में क्रोध आता है और मैं लोगों की हत्या तक के विचार कर लेता हूं।... जलाने से कैसे दूर होगा, जैसा वह पागल है वैसे ही तुम पागल हो कि पाप-पाप की बातें कर रहे हो और परमात्मा की तरफ नहीं देख रहे। देखो और पाप विलीन हो जाएगा। पाप इसलिए है कि परमात्मा की तरफ दृष्टि नहीं है। पाप नहीं होगा, परमात्मा की तरफ दृष्टि भर होने की बात है। उस पापी से कहाः बैठो। तो वह जो आदमी कह रहा था कि मैं पापी हूं, उससे कहाः बैठो। वह आदमी बोलाः लेकिन मुझे तो कोई परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, मेरे भीतर सब पाप ही पाप दिखाई पड़ता है।
सिगड़ी रखी थी, आग बुझने के करीब थी, सर्द रात थी। उस साधु ने कहाः देखो, रात बहुत ठंडी है, शायद सिगड़ी में एकाध अंगारा हो, जरा उसे कुरेदो। उस आदमी ने देखा, उसने कहाः सब राख ही राख है। वह साधु हंसने लगा, उसने कहाः देखो, तुम्हारे देखने में ही गलती है। उसने फिर राख को कुरेदा, एक छोटे से अंगारे को निकाला, फूंका और जलाया और उसने कहाः देखो, यह अंगारा है और यह उतनी ही आग है जितना सूरज में आग है। यह उतनी ही आग है क्योंकि एक बूंद में पूरा सागर है और अग्नि की एक चिनगारी में सारा सूरज है। ऐसी भूल जैसी तुमने सिगड़ी को खोजने में की, अपने बाबत भी कर रहे हो, राख ही राख अपने को समझ रहे हो, पाप ही पाप अपने को समझ रहे हो। थोड़ा और ठीक से खोजो तो चिनगारी मिल जाएगी जो कि सूरज की है। और इस सिगड़ी की आग तो बुझ भी सकती है, लेकिन मनुष्य के भीतर एक ऐसी आग जल रही है जिसका बुझना असंभव है। कितने ही पाप उसे नहीं बुझा सकते हैं और कितना ही अज्ञान उसे नहीं बुझा सकता। कोई भी रास्ता उसे बुझाने का नहीं है, क्योंकि वह मनुष्य की अंतःसत्ता है, और उसे मिटाने का कोई उपाय नहीं है।
तो मैं आपको कहूं, हरेक के भीतर वह सत्य की अग्नि और वह परमात्मा मौजूद है। उसे अगर जानना है तो जो बाहर से हमने सीख लिया है उस राख को झड़ा देना होगा, तो अंगारा उपलब्ध हो जाएगा। और जब भीतर का अंगारा उपलब्ध होता है तो जीवन एक ज्योति बन जाता है। और जब भीतर की अग्नि उपलब्ध होती है तो जीवन एक प्रेम बन जाता है। और जब भीतर की अग्नि उपलब्ध होती है तो जीवन बिल्कुल ही दूसरा जीवन हो जाता है। हम उसी दुनिया में होते हैं लेकिन दूसरे आदमी हो जाते हैं। उन्हीं लोगों के बीच होते हैं लेकिन दूसरे व्यक्ति हो जाते हैं। सारा रुख, सारी पहुंच, सारी समझ, सारी दृष्टि परिवर्तित हो जाती है। और उस नये मनुष्य का जन्म जब तक भीतर न हो जाए तब तक न हमें जीवन का पता होता है, न हमें आनंद का, न सौंदर्य का, न संगीत का। तब तक हम भटकते हैं, जीते नहीं हैं। तब तक हम मूर्च्छित, अर्धनिद्रा में चलते हैं, होश में नहीं होते हैं। तब तक हमारा जीवन एक दुखस्वप्न है, एक नाइटमेयर है, उससे ज्यादा नहीं है। उसके बाद ही हमें पता चलता है कि क्या है जीवन? क्या है धन्यता? क्या है कृतार्थता? और तब जो ग्रेटिट्यूड, तब जो कृतज्ञता का बोध पैदा होता है वह धार्मिक मनुष्य का लक्षण है।
कैसे जो हमारे ऊपर बाहर से इकट्ठा हो गया हम उसे अलग कर दें? कौन सा रास्ता है कि जो हमें सिखाया गया है उसे हम भूल जाएं? कौन सा रास्ता है कि हमारे चित्त पर जो-जो धूल इकट्ठी हो गई हम उसे झाड़ दें और चित्त के दर्पण को स्वच्छ कर लें। रास्ता है। अगर धूल के इकट्ठे होने का रास्ता है तो धूल के अलग होने का रास्ता भी होगा। जिस भांति धूल इकट्ठी होती है अगर हम उसके कारण को समझ लें तो उस कारण पर ही चोट करने से धूल अलग होनी भी शुरू हो जाएगी। धूल कैसे इकट्ठी होती है?

जीवन में धूल इकट्ठे होने के दो कारण हैं। एक तो कारण है, हम होश में नहीं होते हैं। जो भी आता है आ जाने देते हैं। जैसे कोई धर्मशाला हो। आवारा धर्मशाला हो, जिसमें कोई पहरेदार नहीं है। कोई भी आए और ठहरे और कोई भी जाए, कोई रोकने वाला नहीं है, कोई बताने वाला नहीं है, कोई ठहराने वाला नहीं है। हमारे चित्त को हम करीब-करीब ऐसी धर्मशाला, ऐसी सराय बनाए हुए हैं, कोई भी आए और ठहर जाए हमें कोई मतलब नहीं है। कोई कचरा डाल दे हमारे घर में, तो हम नाराज हो जाते हैं और हमारे दिमाग में डाल दे, तो हम धन्यवाद देते हैं कि बहुत अच्छी बातें बताईं। घर में कचरे फेंकने वाले पर हम गुस्सा करते हैं और मस्तिष्क में जो लोग कचरा डालते रहते हैं उन पर हम बिल्कुल गुस्सा नहीं करते हैं।
चौबीस घंटे हमारे मस्तिष्क खुले हुए हैं और व्यर्थ के इन प्रशंस को भीतर ले जा रहे हैं। हम भोजन में तो खयाल रखते हैं कि अशुद्ध भीतर न चला जाए, लेकिन मन के भोजन में बिल्कुल खयाल नहीं रखते और कुछ भी भीतर चला जा रहा है। सुबह से उठ कर अखबार पढ़ रहे हैं, व्यर्थ की किताबें पढ़ रहे हैं, व्यर्थ की बातें कर रहे हैं, व्यर्थ की बातें सुन रहे हैं। जो कचरा दूसरे हमारे दिमाग में डाल रहे हैं उसका कुछ न कुछ बांट और दान हम दूसरों को भी कर रहे हैं। और सारी दुनिया के मस्तिष्क एक अजीब पागलपन और अजीब कचरे से भर गए हैं और हर आदमी दूसरे के दिमाग में डालता चला जा रहा है। इसके प्रति थोड़ी सजगता की जरूरत है, थोड़े होश की जरूरत है। यह जानने की जरूरत है कि मेरे मस्तिष्क के भीतर व्यर्थ कुछ भी न डाला जाए। अगर इसका होश हो।
मैं अभी यात्रा में था। मेरे साथ एक सज्जन थे, उन्होंने बहुत चाहा कि मुझसे बातचीत करें। लेकिन मुझे बिल्कुल चुप देख कर उन्होंने कई उपाय भी किए। मैं हां-हूं करके चुप हो गया। तो वे फिर थोड़ी देर चुप रहे, फिर उपाय किए। उन्हें बहुत बेचैनी थी, उन्हें बहुत परेशानी थी। वे कुछ बोलना चाहते थे। मुझसे उन्हें कोई मतलब न था। उन्हें कुछ निकालना था। जब उनकी बेचैनी बढ़ गई तो मैंने उनसे कहाः अब आप जो कुछ कहना हो, शुरू कर दें। वे थोड़े हैरान हुए क्योंकि कोई बातचीत का सिलसिला नहीं था। मैंने कहाः अब जो भी आपको कुछ कहना हो, शुरू कर दें। वे बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहाः क्या मतलब आपका? मैंने कहाः आप देखें, छिपाएं न। आपके भीतर कोई चीज उबल रही है और आप मेरे ऊपर फेंकना ही चाहते हैं, फेंकें। आपको बिना उसे फेंके राहत नहीं मिलेगी। मैं सुनूंगा, मजबूरी है आपके साथ हूं। वे कुछ हैरान हुए और मुझसे बोले, आपका मतलब क्या है? मैंने कहाः चौबीस घंटे हम फेंक रहे हैं एक-दूसरे पर। न तो फेंकने वाले को होश है कि फेंक रहा है, न लेने वाले को होश है कि वह ले रहा है। इसलिए मस्तिष्क धीरे-धीरे क्षुद्र से क्षुद्र बातों से भरता चला जाता है। उसमें विराट के जन्म की संभावना क्षीण हो जाती है।
मन जितना खाली और शांत और शून्य होगा उतना ही विराट के अवतरण की संभावना पैदा होती है। नहीं तो विराट अवतरित नहीं होता और न विराट का भीतर से आविर्भाव होता है। देखें, यह दुनिया जो है, यह हमारी दुनिया जो है, यह जो बीसवीं सदी जो है, अगर कोई चीज इस सदी के ऊपर लादी जा सकती है तो यह व्यर्थ विचारों की सदी है। इतने व्यर्थ विचार दुनिया में कभी नहीं थे। एक जमाना था, अजीब लोग थे।
मैंने सुना है कि लाओत्सु चीन में एक बहुत बड़ा अदभुत, अदभुत विचारक और अदभुत द्रष्टा हुआ है। वह रोज सुबह अपने एक मित्र के साथ घूमने जाता था। यह वर्षों क्रम चला। कहा जाता है कि जब रास्ते में वे दोनों जाते तो इतनी सी उनकी बातचीत होती थी, उसका मित्र आता और कहता, नमस्कार। कोई आधा घंटे बाद लाओत्सु कहता, नमस्कार। दोनों जब घूमने जाते तो उसका मित्र कहता, नमस्कार। उसके कोई आधा घंटे बाद लाओत्सु कहता, नमस्कार। यह कुल बातचीत थी। एक दिन एक मेहमान उसके मित्र के घर आया, वह उसको भी घुमाने ले आया। घूमने के बाद सांझ को जब मित्र मिला, लाओत्सु ने कहाः देखो, उस आदमी को वापस कल मत ले आना, बहुत बातचीत करने वाला मालूम होता है। उस आदमी ने क्या बातचीत की थी? उसने घंटे, डेढ़ घंटे के घूमने में यह कहा था, आज की सुबह बहुत सुंदर है। लाओत्सु ने कहाः उस आदमी को साथ मत ले आना। बहुत बकवासी मालूम होता है। और उसने बात इतनी की थी डेढ़, दो घंटे के घूमने में कि आज की सुबह

बड़ी सुंदर मालूम होती है। ऐसे लोग थे। ऐसे लोगों को अगर सत्य का अनुभव हुआ हो तो आश्चर्य नहीं है। और हम जैसे लोग हैं अगर हमें सत्य का अनुभव न होता हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं है।
महावीर बारह वर्षों तक मौन थे। क्राइस्ट बहुत दिनों तक मौन थे। मोहम्मद पहाड़ पर जाकर बहुत दिनों तक चुप थे। दुनिया से मौन खत्म हो गया है। हम चुप रहना भूल गए हैं। और जो मनुष्य चुप रहना और मौन रहना भूल जाएगा, उसके जीवन में जो भी श्रेष्ठ है वह नष्ट हो जाएगा। क्योंकि श्रेष्ठ का जन्म ही मौन में होता है। सौंदर्य का और सत्य का अवतरण मौन में होता है। इसलिए स्मरण रखें कि व्यर्थ के विचारों के प्रति सचेत हों, न तो दूसरों से लें और कृपा करें, न दूसरों को दें। सचेत जितने आप होंगे उतने ही क्रमशः आपको बोध होने लगेगा, ये व्यर्थ के विचार आ रहे हैं, इन्हें नमस्कार कर लें। इन्हें भीतर ले जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। इनसे कहें कि कृपा करें और बाहर ठहरें।
अगर परिपूर्ण होश और बोध हो और चौबीस घंटे यह बोध बना रहे तो आप थोड़े
ही दिनों में व्यर्थ विचार के आगमन से मुक्त हो जाएंगे। और जब व्यर्थ विचार का आश्रव या आगमन बंद हो जाए तो भीतर बड़ी घनीभूत शांति उत्पन्न होगी। लेकिन कुछ विचार आपने पिछले जीवन में, और-और पिछले जन्मों में इकट्ठे कर लिए हैं, वे इससे बंद नहीं होंगे, वे तो भीतर घूमते ही रहेंगे। उनके लिए कुछ और करना होगा। बाहर से नये विचारों का आगमन, व्यर्थ के विचारों का भीतर संग्रह न हो, इसके लिए सचेत होना पड़ेगा। होश रखना पड़ेगा, सजग होना होगा, पहरेदार बनना होगा और भीतर जो विचार इकट्ठे हो गए हैं उनसे तादात्म्य तोड़ना होगा अपना।
हमारे भीतर जो भी विचार चलते हैं हम उनके साथ एक तरह की आइडेंटिटी, एक तरह का तादात्म्य कर लेते हैं। अगर भीतर आपके क्रोध आए तो आप कहते हैं मुझे क्रोध आ गया। यह तो भूल की बात है, यह तो झूठी बात है। आपको कहना चाहिए मुझ पर क्रोध आ गया। भीतर आपके कोई विचार आएं तो आपको यह नहीं कहना चाहिए कि मैं ऐसा विचार कर रहा हूं, आपको कहना चाहिए, मेरे सामने इस तरह के विचार घूम रहे हैं। वह मैं को जरा अलग करिए। वह जो भीतर विचारों की और भावनाओं की दौड़ है उससे अपने मैं को अलग करिए। वह अलग है। वह सदा द्रष्टा मात्र है। भीतर जो विचारों का प्रवाह घनीभूत है, इकट्ठे हैं, वे आपके पूरे अचेतन में भरे हैं, आपका पूरा अनकांशस उनसे भरा हुआ है। उनके प्रति सचेत हो जाइए और उनके साथ अपनी आइडेंटिटी, अपना संबंध तोड़ लीजिए और समझिए कि आप अलग हैं और वे अलग हैं। और उनको देखिए, उनके द्रष्टा और साक्षी बनिए। जब वे आएं तो चुपचाप अलग खड़े हो जाइए और देखिए। जैसे कोई रास्ते पर जाती हुई भीड़ को देखता हो, या कोई आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को देखता हो, या कोई रात में उग गए तारों को देखता हो, या जैसे कोई फिल्म के पर्दे पर चलती हुई तस्वीरों को देखता हो, ऐसा उनको देखिए और अपने को दूर कर लीजिए। आप केवल देखने वाले रह जाएं और आपके सारे विचार अलग हो जाएं, तो आप हैरान होंगे, जैसे-जैसे विचारों के साथ संबंध क्षीण होगा, जैसे-जैसे विचारों की पृथकता स्पष्ट होगी, वैसे-वैसे विचार भीतर भी मरने शुरू हो जाते हैं। बाहर के विचारों का आगमन बंद हो; भीतर के विचार क्रमशः मृत हो जाएं, एक घड़ी, एक बिंदु पर आप पाएंगे कि आप परिपूर्ण शून्य में खड़े हैं और जिस क्षण आपको शून्य उपलब्ध होगा उसी क्षण आप पूर्ण को अनुभव कर लेंगे। उसी क्षण सत्य का आविर्भाव हो जाएगा। उसी क्षण आप जानेंगे, परमात्मा क्या है? फिर शास्त्रों की जरूरत न होगी। शास्त्रों में जो लिखा है वह सामने आ जाएगा; शास्त्रों में जो कहा है वह प्रत्यक्ष हो जाएगा। महावीर और बुद्ध को जो अनुभव हुआ होगा, वह आपको अनुभव हो जाएगा।
प्रत्येक आदमी हक रखता है। प्रत्येक का अधिकार है उसे अनुभव कर ले।
हम अपने हाथ से खोए हुए हैं। अगर हम थोड़े सजग हों, थोड़े जागरूक हों, थोड़े प्रयत्नशील हों, थोड़ी साधना में लगें तो निश्चित ही हम भी उन्हीं सत्यों को, उन्हीं अनुभूतियों को पा सकते हैं जो किसी भी मनुष्य ने कभी भी पाई हों। जो एक बीज हो सकता है वह हरेक बीज हो सकता है और जो एक मनुष्य में संभव हुआ वह हर मनुष्य में संभव हो सकता है। लेकिन विचार बाधा है। व्यर्थ

विचारणा बाधा है। सीखी हुई शिक्षा और संस्कार बाधा हैं। उन्हें अलग कर देना होगा और निर्दोष होना होगा और शांत और शून्य और मौन होना होगा। अगर यह हो सके तो आपके भीतर एक अभिनव सौंदर्य का जन्म होगा। एक अभिनव सत्य का संचरण होगा। कोई आपके भीतर एक नई शक्ति और एक नई ऊर्जा अनुभव में आएगी और वह आपका जीवन बन जाएगी। वह आपका सब कुछ बन जाएगी। वह संपत्ति होगी जो मृत्यु के पार जाती है और जिसे कोई भी नहीं मिटा पाता।
और स्मरण रखें, जो मृत्यु के पार जाती है वही जीवन है क्योंकि जीवन अकेला है जिसकी मृत्यु नहीं हो सकती। आपके पास अभी जीवन नहीं है क्योंकि सत्य नहीं है; आपके पास सत्य नहीं है क्योंकि आप शांत और शून्य नहीं हैं। आप शांत और शून्य नहीं हैं क्योंकि आप अपने मन को न तो बाहर से रोक रख रहे हैं कि उसमें कुछ भी भर जाए और न भीतर चलते हुए विचारों से अपने तादात्म्य को तोड़ रहे हैं। अगर ठीक से कोई कारण को समझे; अगर ठीक से पूरे का.ॅजल चेन को समझे कि क्या है जो हमारे मस्तिष्क को बांधता और ग्रसित करता और जमीन पर रखता है और उठने नहीं देता? कौन सी जंजीरें हैं जो हमें बांध लेती हैं संसार के तट पर और सत्य तक नहीं जाने देतीं? तो निश्चित ही उसे कारण दिखाई पड़ जाएंगे। और जिसे कारण दिखाई पड़ जाएं, अगर वह संकल्प करे, उन कारणों के विरोध में चले, तो निश्चित ही वहां पहुंच सकता है जहां पहुंचना जीवन का लक्ष्य है।
शास्त्र जहां नहीं ले जा सकेंगे वहां स्वयं का सत्य ले जाएगा और जब स्वयं का सत्य उपलब्ध होगा तो सब शास्त्र सत्य हो जाएंगे। और जब स्वयं के भीतर अनुभूति जगेगी तो सारे तीर्थंकर और सारे पैगंबर और सारे अवतार और सारे ईश्वर-पुत्र उस अनुभूति में प्रामाणिक हो जाएंगे और तब दिखाई पड़ेगा जो उन्होंने कहा है वह सत्य है। और तब यह नहीं दिखाई पड़ेगा कि क्राइस्ट ने जो कहा है वह सत्य है और महावीर ने जो कहा है वह गलत है। तब यह नहीं दिखाई पड़ेगा कि मोहम्मद ने जो कहा है वह सत्य है और राम ने जो कहा है वह गलत है। जब तक ऐसा दिखाई पड़े तब तक समझना कि शास्त्र बोल रहे हैं, सत्य नहीं बोल रहा है। तब दिखाई पड़ेगा कि महावीर ने जो कहा है, मोहम्मद ने जो कहा है, बुद्ध ने जो कहा है, क्राइस्ट ने, कनफ्यूशियस ने जो कहा है, रामकृष्ण ने जो कहा है, वह सब सत्य है और वह सत्य एक ही है।
जब सत्य उपलब्ध होगा तो सब शास्त्र सत्य हो जाएंगे और जब तक सत्य उपलब्ध नहीं तब तक एक शास्त्र सत्य होगा और शेष शास्त्र असत्य होंगे। और जब तक आपको ऐसा दिखता रहे कि मैं हिंदू हूं तब तक जानना अभी आप धार्मिक नहीं हुए। और जब तक आपको लगता रहे कि मैं जैन हूं तब तक समझना अभी धार्मिक नहीं हुए। क्योंकि धर्म तो एक है। जब सत्य उपलब्ध होगा तो आप सिर्फ धार्मिक होंगे। उस पर कोई विशेषण, कोई शास्त्रीय विशेषण नहीं रह जाता है। ईश्वर करे, ऐसे सत्य में आपको जगाए जो सबका है। ऐसे सत्य में आपको जगाए जो आपके भीतर मौजूद है लेकिन आप उसकी तरफ आंख फेरे हुए हैं। ईश्वर ऐसी प्यास दे, ऐसा असंतोष दे, यह कामना करता हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम, इतनी शांति से सुना है, उससे बहुत अनुगृहीत हूं, बहुत आनंदित हूं। और अंत में अपना धन्यवाद करता हूं और प्रणाम करता हूं सबके भीतर बैठे परमात्मा को। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य का अन्वेषण
पांचवां प्रवचन

प्रेम के पंख

सत्य को या परमात्मा को जानना कोई बौद्धिक ऊहापोह, कोई विचार मात्र करने की बात नहीं है, वरन वे ही व्यक्ति सत्य से परिचित हो पाते हैं, जो अपने भीतर सत्य को ग्रहण करने की क्षमता, पात्रता या ग्राहकता पैदा कर लेते हैं। हम केवल उतने ही अर्थों में जानते हैं, जितनी जानने की क्षमता हममें पैदा होती है और इसलिए स्मरण रखें कि जो हमारा ज्ञान है, वही सत्य की सीमा कभी भी नहीं है। हमारे ज्ञान से सत्य हमेशा बड़ा है। क्यों? क्योंकि जितना हम जानते हैं, उससे बहुत ज्यादा जानने को सदा शेष है। जो हमारा ज्ञान है, वही सत्य नहीं है। सत्य हमारे ज्ञान से सदा बड़ा है। क्यों? क्योंकि हमारी जानने की क्षमता पूर्ण नहीं है। वह मनुष्य जो अपने ज्ञान को ही सत्य की सीमा समझ लेता है, रुक जाता है, ठहर जाता है।
संसार में भी जो हम जानते हैं, वह हमारी इंद्रियों के द्वारा सीमित है। यदि किसी व्यक्ति के पास आंख न हो, तो उसे इस जगत में प्रकाश जैसी कोई भी चीज नहीं होगी। अगर एक ऐसा समाज हो अंधों का, जहां किसी के पास आंख न हो, तो उस समाज के भीतर प्रकाश के संबंध में कोई धारणा नही होगी। प्रकाश तो दूर, वे अंधकार को भी नहीं जानेंगे, क्योंकि उसे जानने के लिए भी आंख का होना और प्रकाश का अनुभव जरूरी है। और यदि हमारे पास कान न हों, तो फिर हमारे लिए ध्वनि नहीं हैं। वस्तुतः केवल उसकी सत्ता ही हमारे समक्ष अनावरित होती है, जिसकी ग्राहकता हममें है।
हमारे संसार की सीमा वही है, जो कि हमारी ग्रहण सीमा है। लेकिन संसार उतना ही नहीं है, हमारे संसार की और संसार की सीमाएं एक ही नही हैं। हमारा संसार हमसे ही सीमित है। इस भांति एक ही संसार में बहुत से संसार हैं। जितनी प्राणी-जातियां हैं, उतने ही संसार हैं। और सूक्ष्मता से देखें, तो जितने व्यक्ति हैं उतने ही संसार हैं। ऐसे एक ही संसार के अनंत संसार हैं, क्योंकि अनंत जानने देखने और अनुभव करने वाले हैं। जितनी अस्मिताएं हैं, संसार उतने ही काल्पनिक खंडों में विभाजित है। मनुष्य से पीछे बहुत से पशु हैं, जिनकी इंद्रियां मनुष्य से कम हैं। किन्हीं नीचे की विकास की सीढ़ियों पर किन्हीं प्राणियों के पास आंखे नहीं हैं, किन्हीं प्राणियों के पास कान नहीं हैं। किन्हीं प्राणियों के पास स्वाद या गंध नहीं है। वे प्राणी उस तल पर प्रकाश या ध्वनियों या गंधों की सत्ता का बोध भी नहीं कर पाते हैं। ऐसे ही मनुष्य के पास जितनी इंद्रियां हैं, उतना उसके जगत का ज्ञान है और यह अज्ञान होगा कि उतनी ही जानकारी को हम संसार की सीमा समझ लें। यदि और इंद्रियां हों, तो संसार का सीमा विस्तार और बड़ा हो जाएगा। वैज्ञानिक उपकरणों से यह हुआ भी है।
यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि ताकि यह समझ में आ सके कि हम उतना ही जानते हैं जितने की जानने की हम अपने में क्षमता पैदा कर लेते हैं। हमारा जानना हमारी क्षमता पर निर्भर है। और जो दृष्य संसार के संबंध में सत्य है, वही अदृष्य सत्ता के संबंध में भी सत्य है। लोग जब भी मुझसे पूछते हैं ईश्वर है, आत्मा है? तब मैं उनसे यही पूछता हूंः क्या आत्मा व ईश्वर को अनुभव करने की क्षमता आपके भीतर है? क्योंकि प्रश्न हमेशा क्षमता का है, प्रश्न ईश्वर के होने का नहीं है। यदि आपके भीतर क्षमता है, तो आप उन सत्यों को अनुभव कर पाएंगे जो अभी आपको अनुभव नहीं होते और यदि क्षमता नहीं है, तो वे सत्य असत्य ही प्रतीत होंगे। और किसी भय से यदि उन्हें स्वीकार भी कर लिया जाए, तो भी वे सत्य नहीं बन सकते हैं। सत्य तो बस वही सत्य बनता है, जो अनुभव बन जाता है।
एक व्यक्ति ने पच्चीस सौ वर्ष पहले एक गांव में बुद्ध के चरण पकड़े थे
और उनसे कहा था कि मैं सत्य को जानने आया हूं। क्या आपकी दृष्टि है, क्या आपकी धारणा है? बुद्ध ने कहाः मेरी जो धारणा होगी, वह तुम्हारे लिए व्यर्थ होगी, क्योंकि सत्य को देखने की जो आंख है, वह तुम्हारे पास नहीं है। मैं जो भी कहूंगा वह असत्य मालूम होगा। क्योंकि जिसे तुम अनुभव नही कर सकते

हो, उसकी सत्यता को तुम कैसे जान सकते हो? और बुद्ध ने उससे यह भी कहा था कि मैं एक गांव में गया था, वहां कुछ लोग मेरे पास एक अंधे को लाए थे। उन्होंने मुझसे कहा कि इसे समझा दें कि प्रकाश है। तो मैंने उन लोगों को कहा कि यह पागलपन की बात है। जिसके पास आंख नहीं, उसे कैसे समझाऊंगा कि प्रकाश है? तो मैने उन लोगों को कहा कि इसे मेरे पास मत लाओ। इसे किसी चिकित्सक के पास ले जाओ किसी वैद्य के पास ले जाओ, इसकी आंख ठीक करवाओ, प्रकाश के संबंध में समझाना व्यर्थ बात है।
आंख ठीक होनी चाहिए। आंख है तो प्रकाश है। और यही मैं आपसे भी कहता हूं। इसकी फिकर छोड़ दो कि सत्य क्या है, इसकी फिकर करो कि क्या आपके पास वह आंख है, जो कि पदार्थ के पार देखने में समर्थ हो जाए। हम जो भी देख रहे हैं, पदार्थ है। पदार्थ के अतिरिक्त जो भी है, वह हमारी अनुभूति के बाहर पड़ जाता है। उसकी संवेदना, उसकी तरंगे हमें स्पर्श नहीं कर पातीं। जब आप किसी मित्र को मिलते हैं तब भी आप केवल उसकी देह से मिल पाते हैं। उसकी आत्मा से आपका कोई मिलन नहीं हो पाता। जब आप बाहर दरख्तों को देखते हैं, तब भी आप दरख्तों की देह से मिल पाते हैं, उनकी आत्मा से आपका कोई मिलन नहीं हो पाता। क्यों, क्योंकि जिसका अभी अपनी आत्मा से मिलन नहीं हुआ है और जिसने अपने भीतर चैतन्य की ऊर्जा को अनुभव नहीं किया है, वह इस जगत में--व्याप्त चेतना को कैसे अनुभव कर सकेगा?
प्रश्न ईश्वर का, सत्य का और प्रकाश का नहीं है, प्रश्न सदा आंख का है
और इसलिए धर्म विचार न होकर मेरी दृष्टि में उपचार है। धर्म कोई वैचारिक बात न होकर उपचार है। यदि हम अपने भीतर की कुछ ऐसी संवेदनशीलताओं को सक्रिय कर सकें जो कि हमारे भीतर सोई हुई पड़ी हैं तो हमारे भीतर अनुभूति के नए-नए क्षितिज खुलते जाएंगे, और हम कुछ जानेंगे जिसे जाने बिना जीवन में न तो कोई अर्थ होता है, न अभिप्राय होता है, न आनंद होता है। जितनी सूक्ष्मतर संवेदना होती जाएगी आपकी, जितनी गहरी ग्राहकता होती जाएगी, उतना ही जगत में स्थूल विलीन होता जाएगा और सूक्ष्म के दर्शन होने लगेंगे। एक घड़ी आती है जब यह सारा जगत पदार्थ नहीं, परमात्मा दिखाई पड़ने लगता है। लेकिन उसके लिए स्वयं को तैयार करना होगा। जैसे कोई किसान खेत को तैयार करता है बीज बोने से पहले, वैसे ही जिसे परमात्मा की ओर उन्मुख होना है उसे अपनी भूमि को तैयार करना होगा, उसे अपने भीतर संगीत को पैदा करना होगा। तभी वह बाहर जो संगीत व्याप्त है उसका अनुभव कर सकेगा।
सूरज दिखाई पड़ता है क्योंकि हमारे पास आंख है सूरज हमें प्रभावित कर सकता है, क्योंकि सूर्य को ग्रहण करने के लिए हमारे पास एक इंद्रिय और क्षमता है। मैं बोलता हूं, मेरी ध्वनि आपके भीतर जाकर प्रतिध्वनित हो जाती है, क्योंकि आपके पास एक ग्राहक इंद्रिय है जो उस ध्वनि को आपके पास पहुंचा देती है। परमात्मा चौबीस घंटे प्रतिक्षण चारों ओर खड़ा हुआ है। हमारी हर श्वास उसकी है, हर अंग उसका है, लेकिन उसका हमें बोध नहीं होता है, क्योंकि उसे हम तक पहुंचाने का द्वार हम अपने हाथों बंद किए हुए हैं।
इस द्वार को खोलने के तीन सूत्र, मैं आज आपसे चर्चा कर रहा हूं कि कैसे आपके भीतर वह संवेदना शक्ति पैदा होगी, जिसके माध्यम से स्थूल विलीन हो जाता है और सूक्ष्म के दर्शन होने शुरू जाते हैं। पदार्थ विलीन हो जाता है और परमात्मा दृश्य हो उठता है। दृश्य से अदृश्य, स्थूल से सूक्ष्म, पदार्थ से परमात्मा की ओर ले जाने वाले तीन सूत्र हैं।
पहला सूत्र है हम अपने से प्रेम करें।
व्यक्ति स्वयं से प्रेम करे। यह प्रेम अबाध और बेशर्त हो। क्योंकि जो स्वयं से ही प्रेम नहीं करता, वह किसी से भी प्रेम नहीं कर पाता है, और प्रेम के अभाव में पदार्थ का अतिक्रमण असंभव है। प्रेम की शक्ति ही मनुष्य के पास एकमात्र शक्ति है, जो कि पार्थिव नहीं है। प्रेम के अपार्थिव सूत्र को पकड़ कर ही परमात्मा की सीढ़ियां चढ़ी जा सकती हैं। लेकिन स्वयं से प्रेम करने की बात सुन कर निश्चय ही थोड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि हमारी तथाकथित धार्मिक शिक्षाएं इसके विरोध में हैं। उनके द्वारा तो परोक्ष-अपरोक्ष ने स्वयं से शत्रुता ही सिखाई जाती है। स्वयं के प्रति निंदा और घृणा पर ही तो हमारे जीवन के आधार रखे जाते हैं। इन आधारों पर ही

तो हम स्वयं का दमन सीखते और करते हैं। हमारी तथाकथित नैतिकता और धार्मिकता सिवाय आत्म-दमन के और क्या है? और आत्म-दमन स्वयं से घृणा और शत्रुता के अभाव में हो ही कैसे सकता है?
मनुष्य की आज तक की धार्मिकता स्वयं को दो खंडो में तोड़ कर उनके संघर्ष और द्वंद्व पर ही तो खड़ी हुई है। इस भांति की आधारभूत भ्रांति पर खड़ा जीवन यदि कुरूप हो जाता हो तो कोई भी आश्चर्य नहीं है। जीवन का सौंदर्य आत्म-द्वंद्व से कभी भी फलित नहीं हो सकता है। क्योंकि जो अपने से ही लड़ता है, वह अपनी शक्ति ही खोता है और उसके जीवन में किसी भांति की विजय तो असंभव है। उसके जीवन में विजय असंभव है, इसलिए कि वह अपने ही दोनों हाथों को लड़ा रहा है। उन दोनों हाथों के पीछे वह स्वयं ही है। इसलिए, जीतेगा तो कौन किससे जीतेगा? जीत भी नहीं होगी--हार भी नहीं होगी। होगा मात्र द्वंद्व और द्वंद्व में शक्ति ह्नास और मृत्यु। इस भांति चूंकि व्यक्ति की सारी शक्तियां अपने ही विध्वंस में सलंग्न हो जाती हैं, इसलिए जीवन कुरूप और अपंग और व्यर्थ हो जाता है।
जीवन स्वयं के सृजन में लगे तो ही सौंदर्य को, सत्य को और शिवम को उपलब्ध होता है। लेकिन आत्म-दमन के उपदेश व्यक्ति के भीतर संगीत तो पैदा नहीं कर पाते, वरन विसंगीत ही पैदा कर देते हैं। यह विसंगीत ही दुख है, चिंता है, संताप है। जो व्यक्ति अपने भीतर द्वंद्व से भर जाता है, जो अपने से ही लड़ने लगता है और अपने को ही शत्रु और स्वयं में विभाजित कर लेता है, जो अपने ही भीतर किन्हीं शक्तिओं को दुश्मन की तरह मानने लगता है और अपनी ही किन्हीं अन्य शक्तिओं को उनके विरोध में खड़ा करा लेता है, वह स्वयं ही स्वयं के लिए नरक का निर्माण कर लेता है। और ऐसे ही जीवन को हम धार्मिक जीवन मानते रहे हैं?
मेरे देखे, धार्मिक जीवन बिल्कुल ही और बात है। वह आंतरिक द्वंद्व का नहीं, वरन आंतरिक शांति और संगीत का जीवन है। वह आत्मविग्रह का नहीं आत्मिक ऐक्य और अखंडता का जीवन है। और जो इस आत्म संगीत को पाना चाहता है, उसे प्रारंभ से ही उसकी बुनियाद रखनी होगी। द्वंद्व से प्रारंभ कर कोई अद्वंद्व पर नहीं पहुंच सकता है। क्योंकि जो अंत है, वह प्रारंभ में ही उपस्थित रहता है। इसलिए स्मरण रहे कि प्रथम चरण अंतिम चरण से कहीं ज्यादा मूल्यवान है। परमात्मा तो परम संगीत है। और इसके पहले कि मैं उस संगीत से जुडूं यह अति आवश्यक है कि मैं स्वयं संगीत बन जाऊं। और वह संगीत स्वयं को घृणा करने से नहीं, आत्म निंदा और आत्म विग्रह से नहीं, वरन स्वयं को प्रेम करने से उत्पन्न होता है।
आध्यात्मिक जीवन की पहली बुनियादी आधार कड़ी अपने से प्रेम करना है। निश्चय ही इससे आप थोड़े हैरान होंगे, क्योंकि हमें तो कहा जाता है कि आपके भीतर कुछ है, जिसे दबाओ, आपके भीतर कुछ है जिसे नष्ट करो, किंतु मैं आपसे कहता हूं कि आपके भीतर ऐसा कुछ नहीं है, जिसे दबाओ, नष्ट करो। हां आपके भीतर कुछ शक्तियां जरूर हैं, जिन्हें रूपांतरित करना है, नष्ट नहीं। जिन्हें प्रेम करना और जगाना है, दबाना नहीं। जिन्हें मार्ग देना है और दिशा देनी है। लेकिन जो उन्हें शत्रु मान लेता है, वह तो उन्हें रूपांतरित करने में सफल नहीं हो सकता है। ध्यान रहे कि जिसे समझ है, वह अपने भीतर के विष को भी अमृत में परिणत कर लेता है और जिसे समझ नहीं है, वह तो अपने भीतर के अमृत को भी विष में गिरा देता है। इसलिए मैं तो समझ को ही अमृत कहता हूं और समझ के अभाव को ही विष।
हम देखते हैं, सड़ी हुई चीजें, दुर्गंध देती हुई चीजें भी खाद बन जाती हैं। अभी मुझे किसी ने फूल भेंट किए हैं। वे कैसी सुगंध से भरे हैं? और जैसे ही उनकी सुगंध ने मेरे प्राणों को झंकृत किया, मुझे याद आया कि यह सुगंध कहां से आती है। खाद में जो दुर्गंध हैं, वही तो बीजों के माध्यम से प्रविष्ट होकर परिवर्तित हो जाती है। वही तो सुगंध बन जाती है। अगर घर के बाहर आप खाद को इकट्ठा कर लें तो आप दुर्गंध में रहने लगेंगे और अगर घर के बाहर आप खाद की बगिया बना लें तो आप सुगंध में रहने लगेंगे। जो दुर्गंध है वह सुगंध का ही अविकसित रूप है, सुगंध का विरोध नहीं।

मित्र, वह जो दुर्गंध है वह सुगंध का ही अविकसित रूप है। जो विसंगीत
है वह भी संगीत का ही अविकसित रूप है, अव्यवस्थित रूप है। मनुष्य के जीवन में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे खंडित करना और नष्ट कर देना हो, मनुष्य के जीवन में ऐसा जरूर बहुत कुछ है, जिसे परिवर्तित करना है, जिसे उदात्त करना है, जिसे ऊपर उठाना है। मनुष्य के पास शक्तियां हैं, और स्मरण रहे, शक्तियां तटस्थ होती हैं। वे न शुभ होती हैं न अशुभ होती हैं, न अच्छी होती हैं, न बुरी होती हैं। शक्तियां तटस्थ होती हैं। उनका हम जैसा उपयोग करते हैं, वे वैसी ही हो जाती हैं। जिसे लोग सेक्स की शक्ति कहते हैं, काम की शक्ति कहते हैं और तथाकथित धार्मिक व्यक्ति जिसके विरोध में खड़े रहते हैं, वह बिल्कुल तटस्थ शक्ति है, क्योंकि वही शक्ति परिवर्तित होकर दिव्य शक्ति में परिणत हो जाती है। वह तो सृजन की आद्य शक्ति है और उसके उपयोग पर निर्भर है कि वह क्या कर सकती है। उस पर नहीं वरन हमारी समझ और जीवन जीने की कला पर ही निर्भर है कि वह क्या हो सकती है, वही शक्ति तो परिवर्तित होकर ब्रह्मचर्य बन जाती है। ब्रह्मचर्य काम शक्ति का विरोध नहीं, उसका ही ऊर्ध्वीकरण है?
जिसे आप क्रोध कहते हैं, क्रोध में प्रकट होने वाली शक्ति ही तो शांति
बन जाती है। परिवर्तन की बात है। जीवन में विनाश की नहीं सृजन की, श्रेष्ठतर सृजन की बात है और यदि सत्य स्पष्ट है, तो सवाल अपने से संघर्ष और शत्रुता का नहीं, अपने से प्रेम करने का है। क्योंकि स्वयं से स्वयं में ही स्वयं का सृजन हो सकता है। और मैं कहना चाहूंगा कि स्वयं से स्वयं के शरीर को बाहर मत रखना। उसे भी प्रेम दो। प्रेम पाकर वह भी जागता है। और उसकी सोई शक्तियां भी सक्रिय हो उठती हैं। लेकिन न तो तथाकथित भोगी शरीर से प्रेम करते हैं और न तथाकथित त्यागी। भोगी की स्वयं की देह के प्रति घृणा उसके असंयम में प्रकट होती है। इस घृणा में ही तो वह देह का अपव्यय कर पाता है। और चूंकि त्यागी भी इस भोगी की प्रतिक्रिया होते हैं, इसलिए शरीर के प्रति शत्रुता में वे भी पीछे नहीं हैं। निश्चय ही उनकी दिशा भिन्न होती है। वे संयम के नाम पर शरीर को सताते हैं। एक भोग के नाम पर सताता है, एक त्याग के नाम पर। लेकिन, शरीर के प्रति प्रेम और धन्यता का भाव उन दोनों में ही नहीं होता है।
शरीर के प्रति अनूकुल का भाव और प्रेमपूर्ण दृष्टि स्वस्थ चित्त व्यक्ति का अनिवार्य लक्षण है। शरीर के साथ कैसा भी दुर्व्यवहार अस्वस्थ और रुग्ण चित्तता है। और चित्त के दो रोग हैं--भोग का रोग और त्याग का रोग। भोगी चित्त इसलिए तो एकदम से त्याग पर पहुंचता है। काश! वह बीच में रुक सकता। लेकिन एक रोग से दूसरे रोग पर जाना सदा ही आसान होता है और रोग से महारोग पर जाना हो, तब तो कहना ही क्या है? ऐसे ही रुग्ण-चित्त व्यक्तियों ने बहुत कुछ सिखाया है, वे सिखाते हैं कि शरीर शत्रु है। इससे लड़ना है। और ऐसी विषाक्त शिक्षाओं का ही परिणाम है कि धर्म अत्यंत शरीरवादी हो गया है। शरीर का विरोध भी तो शरीर पर ही केंद्रित कर देता है। इसलिए मैं कहता हूं कि यदि शरीर का अतिक्रमण करना है, यदि उससे ऊपर जाना है, तो उससे लड़ो मत, उससे शत्रुता मत पालो, वरन उसे प्रेम करो और उससे मित्रता साधो।
शरीर शत्रु नहीं है। साधन है और बहुत अदभुत साधन है। उसका उपयोग करो
और जिसका भी उपयोग करना हो उसके प्रति प्रेम का हाथ बढ़ाना चाहिए। सब से पहले अपने शरीर के प्रति प्रेम का हाथ बढ़ाना चाहिए। शरीर परमात्मा की अनूठी कृति है। वह बहुत रहस्यपूर्ण सीढ़ी है। उस पर से ही होकर तो परमात्मा तक जाना है। और वह व्यक्ति निश्चय ही पागल है, जो कि सीढ़ी को पार तो नहीं करता, वरन उससे लड़ता है। और ऐसे पागल चारों ओर हैं। उनसे सावधान रहना आवश्यक है। ऐसे पागलों के कारण मनुष्य जाति का कितना अहित हुआ है, इसका हिसाब लगाना कठिन है। जो शरीर आपको सहज ही मिला है उसमें क्या क्या रहस्य छिपे हैं, यह आपको पता ही नहीं है।
यदि कोई व्यक्ति अपने शरीर के ही रहस्यों को जान ले, तो वह परमात्मा
के अनंत रहस्यों की कुंजी पा सकता है। यह कितना छोटा सा शरीर है, पर इसमें बड़े विराट छिपे हैं। इसमें ही मन छिपा है। उस मन में ही आत्मा छिपी है। उस आत्मा में ही परमात्मा छिपा है। एक संत जब मर रहा था, तो उसने अपने पास

उपस्थित सारे लोगों से विदा ली और सारे लोगों को धन्यवाद दिया और अंत में वह हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ और उसने कहाः ‘हे मेरे प्यारे शरीर, तू ने ही मुझे परमात्मा तक पहुंचाया है, मेरे धन्यवाद को स्वीकार कर। मैं तेरे लिए कुछ भी नहीं कर सका और उलटे मैंने तुझे सदा यातना और पीड़ा ही दी। मैंने सदा तुझसे काम लिया है और बदले में कुछ भी नहीं दिया है। मैं तेरा अत्यंत ऋणी हूं और इस विदा के क्षण में तुझसे क्षमा मांगता हूं। जो भूल-चूक मैंने तेरे साथ की हो, उसके लिए मुझे क्षमा करना। मुझ पर तेरे उपकार अनंत हैं। तेरे बिना मैं परमात्मा तक पहुंचने में असमर्थ ही था।’
शरीर के प्रति ऐसी ही दृष्टि चाहिए--ऐसे ही अनुग्रह का भाव चाहिए--ऐसा
ही प्रेम चाहिए। उस संत ने अपने शरीर से कहाः ‘हे मेरे प्यारे शरीर!’ ये शब्द मेरे हृदय को एक अदभुत आनंद से भर देते हैं! क्या आपके जीवन को भी ऐसी ही समझ आलोकित नहीं कर सकती है? क्या मैं पूछ सकता हूं कि क्या कभी आपने अपने शरीर के प्रति ऐसे प्रेम से भर कर निहारा है? क्या कभी उसकी सेवाओं के लिए अनुगृहीत हुए हैं? क्या कभी उसका धन्यवाद किया है? यदि नहीं तो यह कैसी अकृतज्ञता है? यह कैसी अशिष्टता है? यह कैसा असज्जनोचित्त व्यवहार है?
शरीर के प्रति समझ चाहिए। गहरी संवेदना चाहिए। उसकी हिफाजत का बोध चाहिए। और मैत्रीपूर्ण रुख चाहिए। वह बहुत बड़ी यात्रा पर सुख-दुख का साथी है। वह साधन है। वह सीढ़ी है। इसलिए मेरी दृष्टि में जिसको भी समझ है वह शरीर के प्रति दुष्टता और शत्रुता का व्यवहार नहीं कर सकता है। लेकिन दुनिया में ऐसे विक्षिप्त लोग हुए हैं और हैं, जिन्होंने अपने शरीर के साथ जो दुर्व्यवहार, जो हिंसा और जो दमन और जो उत्पीड़न किया है, वह हृदय को रूदन से भर देता है और प्रार्थना से कि हे परमात्मा! मनुष्य-जाति को ऐसी आध्यात्मिकता से मुक्त कर। ऐसे पागलों का व्यवहार सिवाय इसके कि उन्होंने अपनी बुद्धि खो दी हो और किसी बात का प्रमाण नहीं है। लेकिन ऐसे लोगों के भी दूषित प्रभाव पीछे छूट गए हैं और आज भी हमारा पीछा कर रहे हैं। इस तरह बीमार शिक्षाओं से स्वयं को मुक्त करें। ऐसे लोगों को पूजने
की नहीं, वरन उनकी चिकित्सा की आवश्यकता है।। और मैं आशा करता हूं कि कभी न कभी हम यह जरूर ही कर सकेंगे। शरीर के भोग से जो अशक्ति, असफलता, और असंतुष्टि पैदा होती है, उसकी तीव्र प्रतिक्रिया में शरीर से शत्रुता हो जाती है। इस भांति स्वयं के दोष शरीर पर थोप दिए जाते हैं, जो कि बिल्कुल ही निर्दोष है।
मैं शरीर की शत्रुता पर खड़ी समस्त कृच्छ साधनाओं के प्रति सजग होने
का निवेदन करता हूं, क्योंकि शरीर को जिस भांति आपने अब तक भोगा है, उसके कारण वैसी कृच्छ साधनाओं का एक प्रबल आकर्षण आपके भीतर भी हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति धन को देख कर लालच से भर जाए या किसी व्यक्ति के रूप को देख कर लोभ से और आकर्षण से भर जाए और अपनी आंखे फोड़ ले, तो उसे मैं पागल कहूंगा। क्योंकि आंखें न तो लोभ करने को कहती हैं, न राग करने को कहती हैं। आंखें तो कुछ भी नहीं कहती हैं। आप आंखों से जो उपयोग लेते हैं, वे उसी के लिए राजी हो जाती हैं। शरीर तो एकदम आपका अनुगत है, शरीर तो एकदम सेवक है। वह तो सदा तैयार है, उसे जहां आप ले जाएं। आप कहें नरक चलो तो शरीर नरक चलने को हाजिर है, आप कहें स्वर्ग चलो, तो शरीर स्वर्ग चलने को राजी है। सवाल शरीर का नहीं, वरन आपके संकल्प का है। और स्मरण रखें, संकल्प के पीछे शरीर सदा चला जाता है। हम गलती करेंगे, अगर हम संकल्प को तो न बदलें और शरीर को कष्ट देने लगें और पीड़ा देने लगे और शरीर को नष्ट करने लगें।
शरीर के साथ किया गया दुराचार हिंसा का ही एक रूप है, आत्महिंसा का और उसका मैं समर्थन नहीं करता हूं। मैं आत्म-प्रेम का समर्थन करता हूं और मुझे दिखाई पड़ता है कि स्वयं के प्रति हिंसा से अधिक मूर्खतापूर्ण और कुछ भी नहीं हो सकता है। लेकिन आत्म-प्रेम से मेरा प्रयोजन अहं-केंद्रित व्यक्तित्व से नहीं है। अहं-केंद्रित व्यक्ति तो कभी स्वयं को प्रेम करता ही नहीं, क्योंकि यदि वह स्वयं को प्रेम करता, तो अहंकार से मुक्त हो जाता, क्योंकि अहंकार से अधिक पीड़ादायी तो कोई नरक ही नहीं है। अहं-केंद्रित व्यक्ति ही धार्मिक बन आत्म-हिंसा में प्रवृत्त होता है, क्योंकि इस

भांति अहंकार की जितनी तृप्ति और पुष्टि होती है, उतनी और किसी भांति नहीं होती है। तथाकथित त्यागियों, साधुओं और अर्ध-महात्माओं में जो दर्प परिलक्षित होता है, वह इसी कारण। महात्मा होने के कारण वे अहंकारी हैं और अहंकारी होने के कारण महात्मा हैं।
परमात्मा की प्रकृति में कुछ भी ऐसा नहीं हो सकता है, जो आपके प्रति शत्रुतापूर्ण हो, कुछ भी ऐसा नहीं हो सकता हैं, जो आपके विरोध में खड़ा हो। लेकिन आप उसका उपयोग न करें या दुरुपयोग करें, तो बात ही दूसरी है। रास्ते पर पत्थर पड़ा हो तो जो जानते हैं, वे उसे सीढ़ी बना लेते हैं और जो नहीं जानते, उनके लिए बनी हुई सीढ़ी भी रास्ते में अटकाव, अवरोध हो जाती है। जीवन में सब कुछ दृष्टि की बात है। और दृष्टि ही भ्रांत हो, तो बहुत बड़ा अंतर पड़ता है। शरीर को शत्रु मान कर ही जो प्रारंभ करता है, उसके लिए वह शत्रु ही हो जाता है, तो आश्चर्य नहीं है। उसे मित्र मान कर प्रारंभ करें। उसे मित्र जानें। वह मित्र है। उसके प्रति विरोध--वैमनस्य जाते ही एक बोझ स्वयं से हट जाता है--एक तनाव से मुक्ति हो जाती है--एक शांति और विश्रांति का अनुभव होता है। करें और देखें। स्मरण रखें, शरीर तो केवल माध्यम है। वह किसी को कहीं नहीं ले जाता है। उसके प्रति सब दुर्भाव छोड़ें। पक्षपातमुक्त होकर उसे देखेंगे, तो उसकी मूक सेवाओं के प्रति हृदय अनायास ही प्रेम से भर जाता है।
...फिर शरीर पर ही नहीं रूक जाना है। और गहरे भी चलना है। शरीर तो स्वयं
के प्रति प्रेम की यात्रा का प्रारंभ बिंदु ही है। शरीर से गहरे जाते ही मन है। इस मन को भी प्रेम करना है। इससे भी मैत्री करनी है। साधारणतः स्वयं के व्यक्तित्व के ये दो तल--शरीर और मन--ही तो हमें ज्ञात हैं। इनसे ऊपर या इनसे गहरे जाने को इनका ही तो उपयोग करना है। शरीर की भांति ही मन के विरोध में तो और भी बड़े प्रचार हैं। मन तो धार्मिक शत्रुता का केंद्र ही है। जब कि मन से मुक्त होने के लिए पहले इस शत्रुता से ही मुक्त होना आवश्यक है। मन तो एक शक्ति है और वैसे ही परमात्मा की शक्ति है जैसे अन्य सारी शक्तियां हैं। न केवल वह अन्य शक्तियों की भांति एक शक्ति मात्र है, बल्कि एक अत्यधिक विकसित और सूक्ष्म शक्ति है। उसकी निंदा और विरोध और उसे गालियां देना नासमझी तो है ही, अत्यंत घातक भी है। उचित तो यही है कि हम जानें कि अभी मनुष्य न तो मन के पूरे रहस्यों से ही परिचित है, और न ही मानस शक्ति का उपयोग ही करना जानता है।
अभी मन की स्थिति वैसी ही है, जैसे कभी विद्युत की थी। एक समय था कि विद्युत केवल विनाश ही करती थी, लेकिन आज वह अत्यंत सृजनात्मक कार्यों मे प्रवाहित हो रही है। मन की शक्ति से जिस दिन मनुष्य पूरी तरह परिचित होगा, उस दिन मनुष्य जाति के इतिहास में बड़ी सृजनात्मक और सौभाग्य की घड़ी उपस्थित हो जाएगी। मन अपरिसीम शक्तिओं का भंडार है। लेकिन जो मन के विरोधी हैं, वे इन्हीं शक्तियों से टकरा कर अपने ही हाथों नष्ट हो जाते हैं। जो लोग मन के विरोध में हैं, उन की निंदा और विरोध का मूल कारण हैः मन की चंचलता। जबकि चंचलता जीवन का लक्षण है। किंतु अनेक लोग जीवन से ही भयभीत होते हैं और मृत्यु के आकांक्षी। ऐसे आकांक्षियों को जड़ता ही शुभ मालूम होती है, क्योंकि जड़ता में उन्हें शांति के दर्शन हो जाते हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि वह शांति झूठी है, जो जड़ता से फलित होती है।
चित्त की जड़ता तो आत्मघाती है। उसमें दिखने वाली शांति मरघट की शांति है।
और मरघट की शांति से तो जीवन की अशांति भी बेहतर है। मन को मार कर लाई गई शांति नहीं, मन को जान कर आई शांति का ही मूल्य है और उसकी ही उपादेयता है।
वैसी शांति ही और ऊंचाइयों की ओर ले जाने वाला वाहन बन सकती है।
मृत शांति तो परमात्मा की ओर नहीं, पदार्थ की ओर चली जाती है। चाहिए जीवंत शांति--जीवंत मौन। क्योंकि जो जीवंत है, वही परम जीवन की ओर जाने का द्वार बन सकता है। इसलिए मैं मन को मार कर--उसकी चंचलता को मार कर शांत होने को नहीं कहता हूं। वैसी जड़ता और मूढ़ता में कभी मत पड़ना। वैसे ही जड़ता काफी है, और आप उसे और न बढ़ाइए तो बड़ी कृपा होगी। मैं तो ऐसा चित्त चाहता हूं, जो कि जीवंत भी हो, और शांत भी। और चंचलता को--प्रवाहशीलता को बिना खोए जो शांति मिले वही जीवंत हो सकती है। सरोवरों की शांति नहीं, चाहिए

सरिताओं की शांति--सतत सागर की ओर बहती जीवित सरिताओं की शांति। यह हो सके तो ही व्यक्ति परमात्मा तक पहुंच सकता है।
इसलिए मैं कहता हूं कि मन की चंचलता से दुखी मत होइए, न ही उसकी निंदा करिए और न उसके शत्रु बनिए। अच्छा तो यही हो कि आप उसकी कृपा मानिए, नहीं तो आप बहुत पहले ही कहीं सरोवर बन गए होते। मन चंचल न हो तो आप किसी भी कूड़े-कचरे पर किसी भी घूरे के ढेर पर एकाग्र हो बैठ गए होते। मन चंचल न होता तो लोभी पर, मोही मोह पर, कामी काम पर ही सदा को ठहर जाता। फिर तो परमात्मा तक उठने का कोई मार्ग नहीं था। क्योंकि बीच यात्रा में ही कोई भी परमात्मा का काम दे सकता था। लेकिन मन की चंचलता के समक्ष सभी झूठे परमात्मा बह जाते हैं और मन आगे बढ़ जाता है। मन चंचल है इसलिए कहीं टिकने नहीं देता और सदा आगे बढ़ाता रहता है।
मन की चंचलता के पीछे एक बड़ा रहस्य सूत्र है, जो मैं आपको कहना चाहता हूं और वह यह हैः ‘मन इसलिए चंचल है कि जब तक मन के योग्य अंतिम विश्राम न आ जाए, तब तक वह आपको चैन नहीं लेने देगा। मन केवल परमात्मा में जाकर ही अपनी चंचलता को छोड़ता है। इसके पहले वह अपनी चंचलता नहीं छोड़ता है। यह उसकी बड़ी कृपा है, अन्यथा आप संसार में ही न मालूम कहां स्थिर हो जाएं और परमात्मा तक पहुंचने की बात ही समाप्त हो जाए।’ इसलिए मन की चंचलता को गाली न दें और निंदा न करें। मन की चंचलता को भी कृपा जाने और उसका भी उपयोग करें। स्मरण रखें कि जहां मन स्थिर नहीं हुआ है, वहां जरूर कोई गलती है, इसलिए मन वहां बैठना नहीं चाहता। आप बैठाना चाहते हैं, और मन नहीं बैठना चाहता है, जरूर ही इसमें आप ही भूल में हैं। मन तो चंचल हो आपको चेता रहा है, लेकिन आप हैं कि चेतते ही नहीं और उलटे मन को ही शत्रु मान लेते हैं।
एक कहानी मैंने सुनी है। मिश्र में एक बादशाह था और वहीं एक छोटे से गांव में एक फकीर भी था। बादशाह फकीर का बहुत आदर करता था। वह उससे मिलने और उसे राजधानी में आमंत्रित करने उसके गांव गया। उसने पहले से कोई खबर नहीं की। वह जब फकीर के झोंपड़े पर पहुंचा, तो वहां उस फकीर का एक शिष्य बैठा हुआ था। उसने बादशाह को खेत की मेड़ पर बैठने को कहा और कहा कि मैं जाकर गांव में गए अपने गुरु को बुला लाता हूं। लेकिन बादशाह बैठा नहीं, वहीं टहलने लगा। यह देख उस युवक ने कहा आप झाड़ के नीचे बैठ जाएं, वहां छाया है। लेकिन फिर भी बादशाह बैठा नहीं, वह वृक्ष के नीचे ही टहलने लगा। युवक ने कुछ सोच उससे कहाः आप झोपड़े में अंदर चल कर बैठ जाएं। लेकिन बादशाह फिर भी नहीं बैठा और झोंपड़े की दहलान में ही घूमने लगा। यह देख युवक बहुत हैरान हुआ। वह जाकर गुरु को बुला लाया। मार्ग में उसने अपने गुरु से बादशाह के आश्चर्यजनक व्यवहार के संबंध में पूछा। उस वृद्ध फकीर ने कहाः बादशाह के बैठने योग्य स्थान हमारे पास नहीं है, इसलिए वह टहलता है।
मैं आप से कहना चाहता हूं कि मन भी इसलिए ही चंचल है। वह भी अब तक अपने योग्य सिंहासन नहीं पा सका है और इसलिए ही भटक रहा है। खोजें--उसके योग्य सिंहासन खोजें। वह तो नहीं करते हैं, उलटे आप उसकी चंचलता से ही लड़ने को आमादा हो उठें हैं! क्या कभी आपने सोचा कि बैठने के लिए आपने उसे कौन से स्थान बताए हैं? और क्या आप चाहते हैं कि वह उनमें से ही किसी पर बैठ जाता? मित्र, मन की चंचलता आपके ऊपर बड़ी कृपा है। आप जो-जो जगह उसे बताते हैं, यहां बैठ जाओ, वहां वह बैठता नहीं। परमात्मा के पहले मन कहीं भी नहीं बैठता है और उसकी यह असीम कृपा है। मन की चंचलता बड़ी सहायक है। स्मरण रखें, जहां मन नहीं बैठता, समझ जाएं कि वह मन के योग्य स्थान नहीं है। थोड़ी बहुत देर जबरदस्ती बिठा लें, वह फिर उठ जाएगा और फिर कहीं और भागने लगेगा। उस क्षण तक यह भाग चलती रहेगी जब तक परम विश्राम का बिंदु न आ जाए। वह परम विश्रांति का बिंदु ही परमात्मा है।
लोग कहते हैं कि मन को एकाग्र करें, तो परमात्मा मिल जाएगा। मैं कहता हूं, परमात्मा मिल जाए, तो मन एकाग्र हो जाए। लोग कहते हैं कि मन को बिठाएं तो परमात्मा मिल जाएगा और मैं कहता हूं कि परमात्मा मिल जाता है, तो मन बैठ जाता है। मन तो वहीं जाता है, जहां सुख है। मन दुख की ओर नहीं जाता है। मन तो वहीं भागता है, जहां सुख है, और जहां सुख की झलक टूटी, तो मन पुनः भागने लगता है। इसलिए मन कहीं नहीं टिकता है। दस हजार रुपये इकट्ठा कर लें मन

पहले कहेगा शायद सुख हो। चलो दस हजार इकट्ठे हो गए, लेकिन लो, मन तो फिर भागने लगा। वह दस हजार पर बैठ भी नहीं पाया था कि उसका भ्रम दूर हो गया। दस लाख इकट्ठा कर लो, दस लाख इकट्ठे हो गए, तो फिर मन का भ्रम दूर हो जाएगा। दस करोड़ इकट्ठा कर लें। लेकिन फिर वही होगा। मन भागता ही रहता है। जहां सुख का आभास मिलता है, वहीं भागता है, जहां भी सुख का आभास टूटा वहीं से भागता है। मन उसी दिन अपने भागने को बंद करता है, जिस दिन सच्चा सुख मिल जाए, जिसका आभास नहीं टूटता। जैसे ही आभास टूटता है कि मन चंचल हो जाता है। जब तक आभास होता है तब तक मन थोड़ा सा थिर होता है। अगर सच में सुख मिल जाए तो मन बिल्कुल थिर हो जाता है, फिर भागने का प्रश्न ही विलीन हो जाता है।
तो मैं आपको नहीं कहूंगा कि मन को जबरदस्ती ठहराएं। जबरदस्ती ठहराने
से जड़ता आती है, अंतिम मंजिल नहीं। अंतिम मंजिल आने पर मन ठहर जाता है, इससे ही यह भ्रांति पैदा हुई कि जैसे उसके ठहर जाने से मंजिल आ जाएगी। यह तो बैलों के आगे गाड़ी बांधना है। यह तो वैसे ही है, जैसे नींद आने पर आंखें बंद हो जाती हैं, तो कोई सोचे कि आंखे बंद कर ली तो नींद आ गई। मैं तो आपको कहूंगा कि मन को उस दिशा में क्रमशः और प्रेम से गतिमय करें, जहां सच्चे सुख की सुगंध है, जहां सच्चे सुख का और आनंद का आवास है उस तरफ मन को क्रमशः ले चलें। आनंद की ओर आंखें उठावें और मन तो स्वतः पीछे आएगा। लेकिन भूल कर भी मन के साथ जोर जबरदस्ती और बलात्कार न करें। उसका परिणाम उल्टा ही होता है। मन प्रतिरोध करने लगता है। उससे प्रतिकार आने लगता है। फिर आपकी वर्जनाएं ही उसे आमंत्रण बन जाती हैं और आपके निषेध ही आकर्षण। वह उन्हीं दिशाओं में उत्सुक हो उठता है, जिनमें जाने से आप उसे रोकना चाहते हैं। यह स्वाभाविक ही है।
इस सीधे सादे नियम को न जानने से आप व्यर्थ के क्लेशों में पड़ जाते हैं। पहली बात जानें कि मन आपका शत्रु नहीं है। उसे प्रेमपूर्ण दिशा निर्देश दें और उसकी वृत्तियों का दमन न करें। उसकी वृत्तियों को समझें। उसके प्रति विवेक को जाग्रत करें। विवेक के प्रकाश में जो शुभ है, वही शेष रह जाता है, और जानें कि जिसको हम प्रेम करते हैं, उसको हम जीत लेते हैं। हम स्वर्ण सूत्र को सदा स्मरण रखें। और जिससे हम घृणा करते हैं उसको हम जीत नहीं पाते। कभी नहीं जीत पाते। कोई कभी नहीं जीत पाता है। जिसको हम घृणा करते हैं और शत्रु मान लेते हैं, उसे जीतना असंभव है और जिसे हम प्रेम करते हैं, केवल उसी को जीत सकते हैं। जिसे अपने मन को जीतना हो, उसे उससे प्रेम करना होगा। प्रेम के अतिरिक्त विजय का और कोई मार्ग नहीं है।
इसलिए पहला सूत्र है, अपने को प्रेम करें, घृणा नहीं। अपने को परिवर्तन करें, दमन नहीं। अपने भीतर द्वंद्व खड़ा न करें, स्वयं को एक इकाई बनाएं और इकाई प्रेम से ही बनती है। अगर मैं अपने समस्त व्यक्तित्व के प्रति जो भी मैं हूं, जैसा भी मैं हूं--पूरे प्रेम से भर जाऊं और सारी घृणा और निंदा मेरे मन से विलीन हो जाए--जो भी मैं हूं, जैसा भी मैं हूं बुरा और भला, उसके प्रति सारा विरोध छोड़ दूं और स्वयं की पूरी इकाई को प्रेम करने लगूं तो मेरे भीतर एक अखंड व्यक्तित्व पैदा हो जाएगा। व्यक्तित्व ऐसे ही पैदा होता है, क्योंकि प्रेम जोड़ता है, सारे अंगों को इकट्ठा करता है और जब मैं इकट्ठा हो जाता हूं, तो मेरे भीतर अदभुत शक्ति और ऊर्जा का जन्म होता है। जो शक्ति खंडित होकर बह जाती है, वही इकट्ठी और अखंड होकर बहुत बड़ी बन जाती है। और आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि जिन क्षुद्र बातों से लड़ते थे और फिर भी जिन्हें जीत नहीं पाते थे, उनके प्रति जागते ही यह शक्ति, यह ऊर्जा उन्हें रूपांतरित कर देती है। व्यक्तित्व की अखंडता स्वयं के रूपांतर की मूलभिति है। स्वयं को बदलना है, तो सब से पहले एक बनो। खंड-खंडों में बंटा व्यक्ति अपनी सारी शक्ति उन खंडों को लड़ाने, सम्हालने और संतुलन बनाए रखने में ही व्यय कर देता है। आत्म-रूपांतरण के लिए उसके पास अतिरिक्त ऊर्जा ही नहीं होती है। यह ऊर्जा तो केवल उसके पास ही होती है, जो स्वयं को इतना प्रेम करता है कि उस प्रेम में अखंड हो जाता है।
प्रेम की उड़ान में दूसरा सूत्र क्या है? पहला सूत्र है अपने को प्रेम करें, दूसरा सूत्र है अन्यों को प्रेम करें। जो भी आपके चारों ओर आपको छोड़ कर शेष दिखाई पड़ रहा जीवन है, उनके प्रति यदि सदाशयता, सदभाव, प्रेम अहिंसा

और करुणा का भाव न हो, तो आप कभी भी उस प्रेम की ओर अग्रसर न हो सकेंगे, जो कि परमात्मा तक ले जाता है।
क्राइस्ट ने कहा है कि जब तू मंदिर में प्रार्थना को जावे और घुटने टेक कर परमात्मा की तरफ हाथ उठावे और यदि तुझे याद आ जाए कि तेरा कोई पड़ोसी तुझसे नाराज है, तो पहले जा और उससे प्रेम कर। परमात्मा को छोड़ दे। यहीं और जा, उसको प्रेम कर और क्षमा मांग और उससे शांति स्थापित कर। क्योंकि जिस व्यक्ति ने अभी मनुष्यों से भी शांति स्थापित करने में सफलता नहीं पाई, वह स्वयं और परमात्मा के बीच शांति कैसे स्थापित कर सकेगा। निश्चित ही जो व्यक्ति अभी मनुष्यों के तल पर भी प्रेम को नहीं फैला सका, वह परमात्मा के तल पर प्रार्थना को कैसे फैला सकेगा?
एक साधु किसी गांव में ठहरा था। एक आदमी उसके पास आया और उसने उससे कहा कि मैं परमात्मा को पाना चाहता हूं। मैं क्या करूं? साधु ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा होगा, बाहर से भीतर तक देखा होगा और उसे पूछा--एक बात पूछूं तो फिर मैं कुछ कहूं। तुझे किसी से प्रेम है? उस व्यक्ति ने सोचा होगा कि प्रेम तो परमात्मा के मार्ग पर एक अयोग्यता है, सो उसने कहा मुझे किसी से भी प्रेम नहीं है। मैं तो सिर्फ परमात्मा को पाना चाहता हूं। साधु ने कहा फिर थोड़ा गौर से सोचो। थोड़ा अपने भीतर खोजो। पत्नी से, बच्चों से, परिवार से, मित्रों से किसी से प्रेम है? उस आदमी ने कहा, मुझे किसी से कोई प्रेम नहीं है। मैं तो परमात्मा को पाना चाहता हूं। वह साधु चुप हो गया और उसकी आंखों में आसूं भर आएं। वह परमात्मा का खोजी बहुत हैरान हुआ। उसने कहा आप रोते क्यों हैं और आप चुप क्यों हैं? उस साधु ने कहाः यदि तुझे किसी से प्रेम होता, तो उस प्रेम को परमात्मा की प्राप्ति में बदला जा सकता, लेकिन तुझे किसी से प्रेम ही नहीं है, तो द्वार ही टूट गया। लेकिन धर्म के नाम पर तो ऐसे बहुत से उपदेश है, जो आपको सिखाते हैं कि किसी से प्रेम न करें। वे सारे उपदेश आपके अहंकार को केंद्रित कर देंगे। वे आपको परमात्मा तक पहुंचाने में सफल नहीं हो सकते, क्योंकि प्रेम तो उसका द्वार है। प्रेम से इतना भय क्यों है? शायद इसलिए कि कहीं वह हमें बांध न लें? लेकिन प्रेम तो तभी बांधता है, जब हम और प्रेम फैलाने में असमर्थ होते हैं। अर्थात प्रेम नहीं, प्रेम की कमी ही बांधती है। प्रेम थोड़ा है तो ही बंधन बनता है। छोटा प्रेम ही बांधता है। प्रेम विशाल हो, तो बंधनों को तोड़ बहने लगता है। वह जब आकाश जैसा बड़ा होता है, तब तो उस पर कहीं भी सीमा नहीं रह जाती है।
इसलिए मैं कहता हूंः प्रेम को बड़ा करें, विशाल करें, उस पर कोई सीमा न लगाएं--कोई शर्त न लगाएं--वह निरंतर फैलता ही जाए। वह जिस पर बरसे उसका भी अतिक्रमण न करें। वह कहीं रुके न--ठहरे न। प्रेम के कहीं रुक जाने के भय से ही तो तथाकथित अध्यात्मवादी, प्रेम से ही भयभीत हो उठे हैं। किंतु यदि मेरा प्रेम रुकता है, तो वह प्रेम का नहीं मेरा ही कसूर है। उसके लिए प्रेम से शत्रुता कैसे उचित है? प्रेम का दोष प्रेम में नहीं, प्रेमी में है। प्रेम रुकता है, क्योंकि प्रेमी ओछा है--संकीर्ण है। लेकिन इससे जो प्रेम के विरोध में हो जाए वह तो और भी ओछा और संकीर्ण हो जाएगा। ऐसे तो उसमें जो थोड़ी-बहुत विशालता थी, वह भी विनिष्ट हो जाती है। तथाकथित धार्मिक लोगों के अति संकीर्ण मन होने का कारण यही है। मेरी दृष्टि में तो प्रेम को बढ़ाना है और स्वयं को खोना है। लेकिन जो प्रेम को खोता है वह केवल अहं को ही बचा पाता है। प्रेम को फैलाओ। जैसे हम सरोवर में पत्थर को फेंक देते हैं। एक जगह पत्थर गिरता है और फिर उसकी लहरें किनारे की ओर बढ़ने लगती हैं और वे तब तक बढ़ती जाती हैं, जब तक की दूर अज्ञात किनारों को न छू लें। ऐसा ही प्रेम कहीं भी उठे, किसी के प्रति उठे, सागर में उठी लहरों की तरह बढ़ता जाए, उस समय तक जब तक कि परमात्मा के किनारे न छू लें। तो ऐसा प्रेम ही प्रार्थना बन जाता है। तो फिर प्रेम ही प्रार्थना हो जाता है।
मैं नहीं कहता कि मां-बाप से घृणा करो, पत्नी और बच्चों से घृणा करो। मैं नहीं कहता कि किसी से भी घृणा करो। मैं तो कहता हूं कि उनको इतना प्रेम करे, इतना प्रेम करें कि प्रेम उनमें न समा सके और उनके बाहर फै ल जाए। और इतना प्रेम करें कि प्रेम कहीं भी न समा सके और बाहर फैल जाए। इतना प्रेम करें और इतना असीम प्रेम अपने भीतर पैदा करें कि सिवाय परमात्मा के उस

प्रेम को कोई भी झेलने में समर्थ न रह जाए। क्योंकि असीम को केवल असीम ही झेल सकेगा। अगर असीम प्रेम होगा तो सीमित उसको नहीं झेल सकेगा। वह उसके पार निकल जाएगा, उसके अतीत हो जाएगा, उसके ऊपर उठ जाएगा। उससे दूर फैल जाएगा। उसको तो प्रेम मिलेगा, निश्चित प्रेम मिलेगा, बहुत प्रेम मिलेगा। वह तो प्रेम से भर जाएगा लेकिन आपके लिए उस पर किया गया प्रेम, बाधा नहीं बन पाएगा। वह तो तभी बाधा बनता है, जब कहीं रुक जाता है और ठहर जाता है। जो प्रेम रुक जाता है वह राग बन जाता है, वह आसक्ति बन जाता है। और जो प्रेम बढ़ जाता है वह प्रार्थना बन जाता है। स्मरण रखें, जो प्रेम रुक जाता है वह-- मोह हो जाता है, वह राग हो जाता है, वह बंधन हो जाता है। और जो प्रेम आगे बढ़ जाता है लहर की भांति वह प्रार्थना हो जाता है, वह परमात्मा हो जाता है, वह मुक्त हो जाता है।
प्रेम मुक्त करता है, अगर प्रेम बढ़ता जाए और रुके नहीं। उस समय तक बढ़ता जाए जब तक कि कोई शेष न रह जाए जिस पर प्रेम न हो। उस क्षण जो मिलन है, वही मिलन है। वही मिलन परमात्मा से मिलन है। तो स्मरण रखें अपने से प्रेम को कहता हूं और सब से प्रेम को कहता हूं। कभी भी प्रेम को बुरा न समझें इतना ही समझ रखें कि प्रेम रुके नहीं। रुकावट बुरी है, प्रेम बुरा नहीं। लेकिन लोगों ने प्रेम को बुरा समझ लिया है और जब उन्होंने प्रेम को बुरा समझ लिया है, तो उसको सिकोड़ते हैं। वह नहीं जानते कि सिकुड़ा हुआ प्रेम ही रुका हुआ प्रेम है। वह जितना सिकुड़ जाएगा उतना ही गंदा हो जाएगा, उतना ही अपने में बंद हो जाएगा। जो व्यक्ति सब से प्रेम को खींच लेता है वह कहां जाएगा, वह अहंकार में केंद्रित हो जाएगा। जो व्यक्ति सब से अपने प्रेम को खींच लेता है, वह अपनी अस्मिता में, अहंकार में, ‘मैं’ में ही ठहर जाता है और अहं और ब्रह्म के बीच सर्वाधिक फासला है। वे दो बिंदु ही अस्तित्व में सर्वाधिक दूरी पर हैं।
और जो व्यक्ति ‘मैं’ में ठहर गया, वह नरक में पहुंच गया। उसके दुख और पीड़ा का अंत नहीं हो सकता। उसकी पीड़ा अनंत होगी अनंत दुख होगा, क्योंकि उसके आनंद के सब द्वार बंद हो गए हैं, जो कि प्रेम से खुलते हैं। उसके लिए सौंदर्य के सब द्वार बंद हो गए हैं, जो कि प्रेम से खुलते हैं, संगीत के सब द्वार बंद हो गए हैं जो कि प्रेम से खुलते हैं। प्रेम तो कुंजी हैः सत्य की, शिव की, सुंदर की--वही तो गुप्त कुंजी है। जीवन में जो भी श्रेष्ठतम है वह प्रेम से खुलता है और जो श्रेष्ठतम है वह अहंकार से बंद होता है। हां, अहंकार दूसरी कुंजी है। लेकिन, वह नरक के अतिरिक्त और कोई भी द्वार नहीं खोलती है।। और स्मरण रहे कि इन दो कुंजियों के अतिरिक्त और कोई कुंजी नहीं है। और यह भी स्मरण रहे कि एक मनुष्य के पास एक समय में एक ही कुंजी होती है। परमात्मा के विधान में दोनों कुंजियां एक ही साथ एक मनुष्य के पास कभी नहीं होती हैं। एक कुंजी को खोने को जो राजी होता है, उसे ही दूसरी कुंजी उपलब्ध होती है।
प्रेम मनुष्य के हृदय को ही खोलने वाली कुंजी नहीं, वरन हृदय मात्र को खोलने वाली कुंजी है। फिर चाहे वह हृदय पत्थर का हो, पौधे का, पशु का या परमात्मा का। वनस्पति-शास्त्री लुथर बुरबांक की पौधों के प्रति प्रेम की घटना प्रसिद्ध है। उसने पौधों को प्रेम करके उनसे अपनी बातें भी मनवा लीं। उसने कंटीले पौधों से निरंतर कहाः ‘मित्रों, तुम्हें भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं। आत्मरक्षा के लिए इन कांटों की भी आवश्यकता नहीं। क्या मेरा प्रेम ही तुम्हारी पर्याप्त सुरक्षा नहीं है?’ और वर्षों के प्रेम के पुरस्कार में अंततः रेगिस्तान के उन कंटीले पौधों ने भी उसकी बात सुन ली और कांटों से रहित एक नई ही जाति को पैदा करने में वह सफल हो गया। और जब भी कोई उससे पूछता कि यह असंभव सी बात कैसे संभव हुई तो वह कहताः ‘प्रेम से।’
मैं भी आप से कहता हूं कि प्रेम से असंभव भी संभव हो सकता है। निश्चय
ही परमात्मा से ज्यादा असंभव और क्या है, लेकिन वह भी प्रेम से संभव हो जाता है।
और प्रेम असंभव नहीं है। वह तो अत्यंत सरल है। वह तो सब में मौजूद ही है। बस, उसे विकसित करना है और विस्तीर्ण करना है। प्रेम के बीज तो सब में

हैं, लेकिन प्रेम के फूलों तक पहुंचना बहुत ही थोड़े से व्यक्तियों का सौभाग्य हो पाता है। क्यों? क्योंकि हम प्रेम को अंकुरित ही नहीं होने देते। हम चाहते तो हैं लेकिन देते नहीं। और प्रेम पाने से नहीं, देने से विकसित होता है। प्रेम बेशर्त दान है। और जो ऐसा प्रेम देने में समर्थ है वह सहज ही उसे बहुलता से पाता भी है। दिया गया प्रेम, प्रेम पाने की क्षमता का भी निर्माता है। उससे ही प्रेम पाने की पात्रता भी निर्मित होती है। और फिर प्रेम जितना पाया जाता है उतना ही स्वयं से भी दिया जाता है। ऐसे ही प्रेम की गहराइयों पर गहराइयां उभरती हैं और धीरे-धीरे प्राण अपनी समग्रता में प्रेम और केवल प्रेम में ही परिणत हो जाते हैं। लेकिन प्रेम की इस पूर्णता का प्रारंभ सदा दान से होता है। और जो मांग से इसका प्रारंभ चाहते हैं, वे कभी प्रारंभ कर ही नहीं पाते।
प्रेम तो सम्राट है। वह भिखारी नहीं है। इसलिए जो उसे मांगता है, वह पाता तो है ही नहीं, और इस असफलता में ही क्रमशः देने में भी असमर्थ होता जाता है। और जितनी यह असफलता बढ़ती है उतना ही पाना असंभव होता जाता है। इसलिए स्मरण रखें कि प्रेम देना है। बिना कुछ मांगे देना है। उसे प्रतिदान की आशा से मुक्त करें। वह सौदा नहीं है। वह तो बस दान ही है। उसका आनंद उसके देने में ही है, उसके बदले में कुछ पाने में नहीं। वह तो दिए जानें में ही इतना दे जाता है कि बदले में कुछ पाने का प्रश्न ही नहीं। इसलिए ही तो प्रेम देने वाला उसे स्वीकार करने वाले के प्रति सदा ही अनुगृहीत होता है। प्रेम के दान में--अशेष और असीम दान में ही तो प्राणों को परमात्मा तक ले जाने वाले पंख मिलते हैं। मित्र, प्रेम के पंखों को फैलाएं और परमात्मा के प्रकाश में उड़ें। प्रेम के पंख मिलते ही अपने--पराए मिट जाते हैं और जो शेष रह जाता है, वही परमात्मा है। प्रेम के अभाव में तो मनुष्य को अहंकार की पत्थर सी सख्त भूमि पर ही रहना होता है, जहां कि घृणा, हिंसा और क्रोध के कंटीले पौधें बहुलता से उगते हैं। लेकिन प्रेम के पंख पाकर उसे इस भूमि पर रहने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। फिर तो वह उस लोक में उड़कर जा सकता है जहां सौंदर्य है--अनंत सौंदर्य--अक्षय सौंदर्य है-- अक्षत सौंदर्य है।
इसलिए प्रेम से भरें--सबके प्रति और अकारण--और उठते-बैठते प्रेम से भरे रहें, सोते जागते प्रेम से भरे रहें--प्रेम प्रतिपल हृदय में लहरें लेता रहे--वह आपकी श्वास-प्रश्वास ही बन जाए। फिर तो मंदिर जाने की कोई जरूरत नहीं है। आप उसके मंदिर में पहुंच ही गए। प्रेम ही तो उसका मंदिर है। और शेष सब मंदिर तो पत्थर के हैं और इसलिए ही झूठे हैं। और पत्थरों के मंदिरों में जाने वालों का हृदय भी पत्थर का ही हो जाता हो, तो आश्चर्य नहीं है। पत्थरों के मंदिरों में बातें तो प्रेम की होती हैं, लेकिन फैलती वहां से घृणा ही है। शायद घृणा और हिंसा ने स्वयं के छिपाने के लिए ही प्रेम के वस्त्र पहन लिए हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेम के मंदिर के अतिरिक्त और किसी मंदिर को प्रभु का मंदिर न मानना। मनुष्य प्रेम के मंदिर तक न पहुंच सके, इसलिए ही उनका आविष्कार हुआ है। शैतान इस चेष्टा में सदा से ही श्रमरत है!
प्रेम मंदिर है--प्रेम ही सत्य शास्त्र है, कबीर ने कहा हैः ‘ढाई अक्षर प्रेम के पढ़े सो पंडित होय।’
निश्चय ही जो प्रेम को जान लेता है, उसे फिर कुछ और जानने को शेष नहीं
रह जाता है। उसने सब शास्त्र जान ही लिए। और जिसने प्रेम नहीं जाना उसने कुछ भी नहीं जाना। प्रेम से बड़ा कोई ज्ञान नहीं है--भाव नहीं है--अनुभव नहीं है। प्रेम की आंख उस सब को पढ़ लेती है जो पत्ती-पत्ती पर लिखा है, कण-कण में खुदा है, लहर-लहर में छिपा है। मित्र, परमात्मा के हस्ताक्षर हर जगह हैं, फिर आदमियों की किताबों से क्या लेना-देना है। मनुष्य के शब्दों से क्या मिलेगा, और मनुष्य के शब्द कहां पहुंचाएंगे। निश्चय ही मनुष्य के शब्द मनुष्य के ऊपर कभी नहीं पहुंचा सकते। जो मनुष्य से निकलता है, वह मनुष्य के पार नहीं ले जा सकता। मनुष्य के जाने के लिए तो उसे छोड़ कर ही चलना होगा। मनुष्य के शब्द, शास्त्र और सिद्धांत परमात्मा तक पहुंचने में बाधा हैं।

परमात्मा तक चलने के लिए तो उसे पढ़ना होगा, जो कि परमात्मा का है। वह प्रेम में पढ़ा जाता है। मनुष्य के शास्त्रों को पढ़ने को मनुष्य की भाषाएं सीखनी पड़ती हैं। परमात्मा का शास्त्र पढ़ने को परमात्मा की भाषा। उसकी भाषा है प्रेम, प्रेम सीखो। यदि परमात्मा तक जाना है तो उसे सीखना ही होगा। परमात्मा की सृष्टि तो चारों तरफ है। वही-वही तो है। लेकिन यदि प्रेम न हो तो, न तो उसे देखा जा सकता है और न जाना। प्रेम की आंख मिलते ही एक चमत्कार हो जाता है। जो दिखाई पड़ता था, वह विलीन हो जाता है, और जो नहीं दिखाई पड़ता था वह प्रत्यक्ष। फिर परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता है।
मैं कहता हूं कि पंडित भटकता है और प्रेमी पा लेता है। हां, प्रेम के ढाई अक्षर वाला पंडित हो तो बात दूसरी है। प्रेम के बिना जीवन में कोई प्रवेश नहीं है। ज्ञान बाहर भटकता है। ज्ञान में दूरी नहीं मिटती। दूरी तो मिटती है प्रेम में ही। ज्ञान शरीर से गहरा नहीं जाता है, और प्रेम आत्मा से पूर्व नहीं रुकता। इसलिए प्रेम के अतिरिक्त और सब ज्ञान अधूरा और मिथ्या है। प्रेम में जो ज्ञान है, वही ज्ञान है। लेकिन, प्रेम का क्या अर्थ? क्या प्रेम-प्रेम रटते रहें, जैसे कुछ पागल राम-राम रटते हैं या कृष्ण-कृष्ण रटते हैं? नहीं मित्र, शब्द रटने से कुछ भी नहीं होता है। प्रेम को जीएं--प्रेम को जीवन बनाएं। वह जीवंत भाव-दशा बनें तो ही सार्थक है। प्रेम की ऊर्जा सदा स्वयं में जागृत रहे। प्रेम का कोई भी अवसर उसे आप में सोया हुआ न पावे। प्रेम की कोई भी चुनौती खाली न जावे। हर चुनौती पर-- हर पुकार पर आपका प्रेम उत्तर दे। और जब चुनौती न हो तब भी प्रेम वैसे ही बहता रहे जैसे दीए से प्रकाश बहता है, फूलों से सुगंध बहती है। उसकी एक शांत और अविच्छिन्न धारा तो सदा उपस्थित रहनी ही चाहिए।--निरंतर जब प्रेम हृदय को आंदोलित करता है, तो उसके मार्ग के अवरोध बह जाते हैं वैसे ही जैसे पहाड़ से गिरती कोमल जलधारा के सतत प्रवाह में कठोर पाषाण भी गल जाते और मार्ग से मिट जाते हैं।
निश्चय ही प्रेम के मार्ग में बड़ी बाधाएं हैं--बड़ी कठोर चट्टानें हैं, लेकिन प्रेम की शक्ति असीम है। उस असीम शक्ति को काम करने दें--सक्रिय होने दें। अत्यंत धीमा और मौन उसका कार्य है। लेकिन उस शांत सक्रियता में ही बड़ी-बड़ी चट्टानें रेत होकर बह जाती हैं। असल में शोरगुल केवल कमजोरी का लक्षण है। बड़ी शक्तियां सदा ही मौन में कार्य करती हैं। परमात्मा की सारी सृजनात्मकता कितनी शांत, मौन और शून्य है!
मित्र, प्रेम को एक अवसर दें कि वह आपको आमूल बदल डाले। प्रेम की कीमिया से आपका नया जन्म हो सकता है--उसका जन्म हो सकता है, जिसकी कि फिर कोई मृत्यु नहीं है। इसलिए ही तो प्रेम मृत्यु के समक्ष भी अभय होता है, क्योंकि वह मृत्यु को जानता ही नहीं है।
सन अठारह सौ सत्तावन के गदर में, एक मौन संन्यासी को जो कि अनेक वर्षों से मौन था और कुछ भी नहीं बोला था, अंग्रेजों ने यह समझ कर कि यह कोई खुफिया है, विप्लवकारी लोगों का भेदिया है, उसे भालों से मार डाला। वह संन्यासी वर्षों से मौन था, लेकिन आज हंस पड़ा और बोलाः ‘तत्वमसि’--तू भी वही है। तू भी परमात्मा है। जिसने उसकी छाती में भाला छेदा था, उससे ही उसने यह कहा था। और यह कह कर उसने अपने हत्यारे को हृदय से भी लगा लिया था। उस संन्यासी की आंखों से मृत्यु के क्षण में भी प्रेम और प्रार्थनाएं बरस रही थीं। उसने स्वयं को शब्दों से और स्वयं से तो खाली किया था लेकिन प्रेम से जरूर हृदय भर लिया था। इसलिए ही तो भाले के लगते ही वह प्रेम फूट-फूट कर बाहर बहने लगा था। उसका हृदय सत्रह साल से मौन नहीं था, सत्रह साल से प्रेम से भरा था। वह प्रेम का एक झरना ही बन गया था। और इसलिए ही तो आज अपने हत्यारे में भी उसे शत्रु नहीं दिखाई पड़ रहा था। उसे उसमें भी अपने प्यारे के ही दर्शन हो रहे थे। प्रेम ने शत्रु को मित्र और मृत्यु को भी मोक्ष बना दिया था।
प्रेम अंधकार को आलोक बना देता है। प्रेम विष को अमृत में परिणत कर देता है। प्रेम से बड़ा क्या कोई और भी जादू है? नहीं, प्रेम से बड़ा और कोई जादू नहीं है--प्रेम से बड़ा और कोई चमत्कार नहीं है। प्रेम सब कुछ बदल देता

है क्योंकि प्रेम हमारी दृष्टि बदल देता है। और दृष्टि ही सृष्टि है। हमारी दृष्टि ही हमारा जगत है। इसलिए ही तो जैसी दृष्टि हो जाती है, वैसा ही सब हो जाता है। प्रेम है दृष्टि में तो सब ओर प्रियतम है। और प्रेम नहीं हैं तो सब ओर शत्रु है। प्रेम है तो परमात्मा है। प्रेम नहीं है तो परमात्मा नहीं है।
एक गांव में सुबह-सुबह एक यात्री पहुंचा। गांव के बाहर ही द्वार पर एक बूढ़ा बैठा था। उससे उस अजनबी ने पूछाः ‘क्या मैं पूछूं कि इस गांव के लोग कैसे हैं? मैं इस गांव में रुकना चाहता हूं। मैंने अपना गांव छोड़ दिया है।’ उस वृद्ध ने एक क्षण उसे देखा और कहाः ‘क्या मैं भी पूछ सकता हूं कि उस गांव के लोग कैसे थे, जिसे तुमने छोड़ दिया है?’ यह प्रश्न सुनते ही उस आदमी की आंखें क्रोध और घृणा से भर आई और उसने कहाः ‘उनका स्मरण करते भी क्रोध आता है। उन दुष्टों का नाम भी मेरे सामने मत लें। उनकी वजह से तो मुझे उस गांव को छोड़ना पड़ा। उस गांव जैसे दुष्ट लोग पृथ्वी पर और कहीं भी नहीं हैं।’ वह बूढ़ा बोलाः ‘मैं बहुत निराश हूं। इस गांव के लोग भी उस गांव से अच्छे नहीं हैं। इस गांव में भी वैसे ही दुष्ट लोग हैं। तुम रहने के लिए कोई और गांव चुन लो।’ वह आदमी गया भी नहीं था कि एक दूसरे यात्री ने आकर फिर उसी बूढ़े से वही पूछाः इस गांव के लोग कैसे हैं? मैं इस गांव में बसना चाहता हूं। मुझे अपने गांव को छोड़ देना पड़ा है।’ उस बूढ़े ने पूछा कि इसके पहले कि मैं कोई उत्तर दूं, तुमसे पूछ लूं कि जिस गांव को छोड़ा है उस गांव के लोग कैसे थे? वह आदमी बोलाः मत पूछो उनकी बात। उसकी आंखों में प्रेम के आंसू आ गए, उसने कहाः इतने भले लोग मैंने कहीं नहीं देखे जितने उस गांव के थे, लेकिन कुछ मजबूरियों में मुझे उस गांव को छोड़ना पड़ा। उस बूढ़े ने कहाः ‘खुशी से आओ, स्वागत है तुम्हारा। इस गांव के लोगों को तुम उस गांव के लोगों से भी अच्छा पाओगे। यहां भी बड़े अच्छे लोग हैं।’
और उस बूढ़े ने आगे कहाः ‘किसी भी गांव में जाओ हर गांव में तुम्हारा स्वागत होगा। असल में हर गांव में तुम्हारे गांव से अच्छे लोग तुम्हें मिल जाएंगे। जिसकी जैसी दृष्टि होती है वैसी ही दुनिया हो जाती है!’ यह दुनिया कुछ है नहीं, हमारी दृष्टि के सिवाय और कुछ भी नहीं है। अगर प्रेम की दृष्टि हो तो चारों तरफ प्रेमपूर्ण हृदय स्पंदित होते दिखाई पड़ेंगे। और जिस दिन सारा जगत प्रेम से स्पंदित होता दिखाई पड़ने लगे, उस दिन समझना प्रभु के निकट पहुंचना हो गया है। क्योंकि प्रभु पर पहुंचने का अर्थ नहीं है कि वहां कोई रामचंद्र जी धनुषबाण लिए खड़े होंगे। प्रभु पर पहुंचने का मतलब नहीं है कि वहां कोई कृष्णमुरारी बांसुरी बजाते होंगे। प्रभु पर पहुंचने का मतलब नहीं है कि कोई सफेद दाढ़ी वाला बूढ़ा आदमी खड़ा हुआ जगत का नियंत्रण करता होगा। ईश्वर पर पहुंचने का अर्थ है ऐसी अनुभूति पर पहुंच जाना जहां सारा जगत मात्र पदार्थ नहीं, बस परमात्मा है; वस्तु नहीं, शक्ति है। ईश्वर पर पहुंचने का अर्थ है परम आनंद पर पहुंच जाना। ईश्वर पर पहुंचने का अर्थ है--सत्य पर, सौंदर्य पर, अमृतत्व पर पहुंच जाना। परमात्मा व्यक्ति नहीं; अनुभूति है।
परमात्मा आनंद है। वह आनंद का अपरिसीम सागर है।
लेकिन इससे पहले कि वह सागर मिले, उस सागर का पहला अनुभव स्वयं के भीतर पैदा कर लेना होता है। और उस दिशा की ओर ले जाने वाले दो सूत्रों की मैंने चर्चा की। पहला सूत्र है स्वयं के प्रति प्रेम, दूसरा सूत्र है अन्यों के प्रति प्रेम।
और अब तीसरे सूत्र पर विचार करें। तीसरा सूत्र है परमात्मा के प्रति प्रेम। इस तीसरे सूत्र में पहले दो सूत्रों का अतिक्रमण करना है। पहले सूत्र का अतिक्रमण है दूसरे सूत्र में, और तीसरे सूत्र में दोनों का अतिक्रमण है। पहले सूत्र में मान लिया है कि मैं हूं। वह सत्य तो नहीं है, लेकिन एक तथ्य है। अज्ञान में वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है। उससे जागा तो जा सकता है, लेकिन भागा नहीं। जो उससे भागते हैं, वे सदा उसे साथ ही पाते हैं। क्योंकि छायाओं से भागना संभव नहीं है। भागने से वे और पीछा करती हैं। इसलिए, अस्मिता को स्वीकार कर प्रेम की खोज करनी चाहिए। प्रेम बढ़ेगा तो अस्मिता जाएगी ही। छाया को स्वीकार कर जो प्रकाश को खोजता है, वह एक दिन

सहज ही सभी भांति की छायाओं से मुक्त हो जाता है। छाया और प्रकाश का जो संबंध है, वही अहंकार और प्रेम का है। प्रेम का प्रकाश आते ही अहंकार का अंधकार तिरोहित हो जाता है। मैं को मानने से ही पर का, अन्य का जन्म होता है। मैं--मैं हूं, इसलिए ही तो अन्य अन्य हैं। इसलिए, प्रेम के प्रकाश में मैं के साथ ही साथ पर का, अन्य का भाव भी खो जाता है। अंततः तो प्रेम ही शेष रह जाता है। न मैं, न तू, बस प्रेम ही। इस प्रेम की दशा को ही मैं परमात्मा के प्रति प्रेम कहता हूं। वस्तुतः वह किसी के भी प्रति नहीं है। न किसी की ओर से ही है। वह तो बस है। इस शुद्ध प्रेम की अवस्था को ही मैं परमात्मा के प्रति प्रेम कहता हूं।
परमात्मा के प्रति प्रेम का क्या अर्थ होगा? परमात्मा के प्रति प्रेम
का अर्थ होगा कि मैं जो निरंतर अपने को मैं समझे हुए हूं कि मैं कुछ हूं, इस भ्रम को तोड़ देना। इससे झूठी बात और कोई भी नहीं है। आप बिल्कुल नहीं हो। आप की व्यक्तिगत कोई सत्ता नहीं है। यह श्वास मेरे भीतर आती है और चली जाती है और मैं सोचता हूं मैं श्वास ले रहा हूं तो मैं गलती में हूं। क्योंकि जिस दिन श्वास नहीं लौटेगी उस दिन क्या मैं उसे ले सकूंगा? मैं सोचता हूं कि मैं जी रहा हूं तो मैं गलती में हूं क्योंकि जिस दिन जीवन मेरे भीतर से चला जाएगा तो क्या एक क्षण को भी मेरा आपके बीच रुकना संभव होगा? मैं सोचता हूं कि मैंने जन्म लिया है तो मैं भूल में हूं, और सोचता हूं कि मैं मर जाऊंगा तो मैं गलती में हूं। न तो मैंने जन्म लिया है और न मैं मरूंगा। न श्वास मेरी है, न श्वास पर नियंत्रण मेरा है। न जीवन मेरा है, न मृत्यु मेरी है। मेरे भीतर से किसी का खेल हो रहा है, मेरे भीतर से कोई खेल रहा है। मेरे भीतर, से कोई बोल रहा है। मेरे भीतर से कोई चल रहा है। मेरे भीतर कोई जन्म लेता है और मेरे भीतर से कोई विलीन हो जाता है, निकल जाता है। मैं केवल एक भूमि मात्र हूं। मैं केवल एक क्षेत्र मात्र हूं, जहां कोई आता है और जहां कोई चला जाता है। मैं केवल एक बांसुरी की तरह हूं जिससे कोई गीत गाता है।
कबीर ने कहा है कि मैं बांस की पोंगरी से ज्यादा नहीं हूं। परमात्मा
की ओर प्रेम के गीत तेरे हैं। इस बात को जो देख पाएगा, समझ पाएगा और पहली दो सीढ़ियों को जो पार कर जाएगा उसे यह बात समझनी कठिन नहीं है, यह बहुत सरल है, यह अत्यंत सरल है। इस जगत में व्यक्ति जैसा कुछ भी नहीं है। इस जगत में जो कुछ है, सब संयुक्त है और इकट्ठा है। यहां अलग-अलग कोई भी नहीं है। वह श्वास जिसे मैं अपनी समझ रहा हूं, अरबों-अरबों लोगों की श्वास रह चुकी है। और जिस श्वास को मैं छोड़ रहा हूं वह अभी अरबों लोगों की श्वास रहेगी। इस शरीर में जो कण इकट्ठे हुए हैं उससे पहले न मालूम कितने-कितने शरीरों में इकट्ठे हुए होंगे। वे मेरे कैसे हो सकते हैं और कल जब मैं उस शरीर को छोड़ दूंगा तो फिर न मालूम कितने के हो जाएंगे। और अभी भी जब मैंने यह शरीर नहीं छोड़ा है तब भी कोई शरीर ठहरे हुए थोड़े हैं? शरीर तो रोज बदल रहा है। रोज आप नए कण शरीर में ले जा रहे हैं और पुराने कण बाहर निकाल रहे हैं। जो कण आप शरीर के भीतर ले जा रहे हैं, वे दूसरों के शरीरों से आ रहे हैं। हजारों लोगों के शरीरों में, हजारों प्राणियों, करोड़ों प्राणियों के शरीरों में मेरा शरीर रह चुका है और आगे भी रहेगा। वह मेरा कैसे हो सकता है।
...और न ही मन मेरा है। क्योंकि उसके विचार अणु भी शरीर अणुओं की भांति
ही आ जा रहे हैं। मेरा कुछ भी नहीं है। मेरा कुछ भी नहीं है यह भाव परमात्मा के प्रति प्रेम की शुरुआत है। धीरे-धीरे जब देखेंगे कि मेरा कुछ भी नहीं है जब यह भाव गहरा होगा मेरा कुछ नहीं है, तब आपको एक दिन दिखेगा कि अगर मेरा कुछ भी नहीं है तो मैं कैसे हो सकता हूं। जब मेरा कुछ भी नहीं है तो मैं कैसे हो सकता हूं। मेरा कुछ है इसी भाव से धीरे-धीरे यह भ्रम पैदा होता है कि मैं हूं और इसीलिए हम परिग्रह को इतना प्रेम करते हैं। जितना बड़ा मकान हो उतना बड़ा मैं हो जाता हूं। जितना बड़ा पद हो उतना बड़ा मैं हो जाता हूं, जितनी बड़ी संपत्ति हो उतना बड़ा मैं हो जाता हूं। जितना बड़ा अधिकार हो उतना बड़ा मैं हो जाता हूं। क्यों? क्योंकि जितनी मेरी चीजें बढ़ जाती हैं, उतना मेरा मैं बड़ा हो जाता है।

मैं परिग्रह से बढ़ता है। मैं मेरे के साथ बढ़ जाता है। मेरे की जो सीमा
है, वही मैं की सीमा बन जाती है। इसलिए यदि मेरे का भ्रम टूट जाए तो मैं को टिकने का कोई भी आधार नहीं रह जाता है। यदि मेरा कुछ नहीं है तो मैं कहां हूं? मेरा विलीन हो तो मैं निःसत्व हो जाता है--‘मैं’ शून्य हो जाता है। क्या मैं के भ्रम को तोड़ने के लिए हम वस्तुओं से भागें और उनका त्याग करें? यह मुझ से रोज-रोज पूछा जाता है।
मैं कहता हूंः नहीं, वस्तुओं को छोड़ने, न छोड़ने की बात नहीं है। बात है उनके प्रति ‘मेरे’ के भाव की। वह भाव तो छोड़ने पर भी बना रह सकता है। वह तो छोड़ने में ही मौजूद है इसीलिए ही तो तथाकथित त्यागी हिसाब रखते हैं, कि उन्होंने क्या-क्या छोड़ा है, और छोड़ी गई वस्तुओं के मूल्य और मात्रा पर ही तो उनके त्याग का भी बड़ा या छोटा होना निर्भर करता है। एक साधु ने मुझसे कहा थाः ‘मैंने लाखों रुपयों पर लात मारी है।’ मैंने उनसे पूछाः यह लात कब मारी? वे बोलः कोई तीस वर्ष हुए। निश्चय ही सुन कर मुझे हंसी आ गई और मैंने उनसे निवेदन किया थाः ‘महाराज, लात ठीक से लग नहीं पाई, अन्यथा क्या तीस वर्षों में भी वे लाखों रुपयें भूले नहीं जा सकते थे!’
इसलिए, प्रश्न त्याग का नहीं है प्रश्न बोध का है। अबोध में जो त्याग है, वह भी अहंकार को भरने का कारण हो जाता है। यह मानना कि चीजें मेरी हैं गलती है। गलती यह नहीं है कि चीजें हैं। गलती यह है कि उन्हें मानना कि वे मेरी हैं। और इस गलती के दो रूप हैंः एक तो भोगी का रूप है जो कहता है कि मेरी हैं। मैं भोगूंगा। और एक त्यागी का रूप है, जो कहता है कि मेरी हैं, मैं छोडूंगा। लेकिन दोनों मानते हैं कि मेरी हैं। ज्ञान बिल्कुल तीसरी बात कहता है। वह कहता है कि जो है, सर्व का है। सब परमात्मा का है। मेरा तेरा कुछ भी नहीं है। हम स्वयं भी अपने नहीं है। मैं हूं ही नहीं। अस्मिता भ्रम है, सब हो रहा है और उस होने में मैं भी एक हिस्सा हूं, एक हिस्सा मात्र। अगर यह प्रतीति और स्मरण हो तो जीवन हवा पानी की भांति सरल और सहज हो जाता है। ऐसा जीवन ही त्याग का जीवन है। ऐसा जीवन ही प्रेम का जीवन है। परमात्मा के प्रति प्रेम का अर्थ हैः अहंकार विसर्जन।
मलूक ने कहा है कि पंछी काम नहीं करते और अजगर चाकरी नहीं करता और सबका दाता राम है। यह बात बड़ी गलत समझी गई है क्योंकि लोग समझे कि मलूक ने कहा है कि कोई कुछ मत करो, पर यह तो नहीं कहा है। पंछी सुबह से लेकर शाम तक काम करते हैं। घोसले बनाते हैं। दाना चुगते हैं। सब तो करते हैं लेकिन फिर भी वह काम नहीं करते हैं क्योंकि मलूक का खयाल है कि उन्हें यह खयाल नहीं कि हम हैं। उन्हें यह खयाल नहीं कि मैं हूं। काम तो हो लेकिन मैं हूं का भाव चला जाए परिग्रह का भाव चला जाए कुछ भी मेरा है यह भाव चला जाए। जिस-जिस मात्रा में यह स्थिति बढ़ेगी, उस-उस मात्रा में प्रभु का प्रेम विकसित होता है। जिस दिन यह भाव पूरा हो जाता है और लगता है मैं नहीं हूं, जिस दिन लगता है मैं नहीं हूं, बस उसी दिन वह क्रांति हो जाती है जिसकी कि मैं बात करता हूं।
एक सूफी गीत हैः प्रेयसी के द्वार पर एक प्रेमी ने दस्तक दी है और जाकर जोर से दरवाजा हिला दिया है और पीछे से पूछा गया है कौन हो? उसने कहाः ‘मैं हूं तेरा प्रेमी,’ तो भीतर सन्नाटा हो गया। फिर भीतर चुप्पी हो गई। उसने दुबारा भड़भड़ाया, और कहाः उत्तर दो। घर ऐसा सूना मालूम देने लगा जैसे कोई है ही नहीं। भीतर से उत्तर आयाः वापस लौट जाओ, इस घर में दो के रहने लायक जगह नहीं है। प्रेमी वापस लौट गया और बरस आए और गए, वर्षा आई, धूप आई, शीत आई चांद उगे और विलीन हो गए और न मालूम फिर कितने दिन बीते। दुबारा वह प्रेमी आया और उसने द्वार पर दस्तक दी और भीतर से पूछा गयाः कौन हो? उसने कहाः अब तो तू ही है! और गीत कहता है कि फिर प्रेम के बंद द्वार खुल गए। यदि मैं इस गीत को गाता तो अभी द्वार नहीं खोल सकता था, क्योंकि मुझे लगता है यह खयाल कि ‘तू है’ अभी मैं के मौजूद होने की सूचना है। मैं तो प्रेमी को एक दफा और वापस लौटा देता। मेरी कहानी अभी थोड़ी और आगे जाती। और मैं कहता कि जैसे ही उसने कहा कि तू है कि फिर सन्नाटा हो गया। और जब कोई उत्तर नहीं आया तो उसने पूछा कि अब तो द्वार खुल जाएं अब तो मैं नहीं हूं, ‘तू ही’ है। लेकिन भीतर से कहा गया कि जिसे अभी अकेले का पता है उसे अभी

दूसरे का भी पता है। जिसे अभी एक का बोध है उसे अभी दो का भी बोध है। जिसे अभी तू का स्मरण है उसे अभी मैं का भी स्मरण है। और इस मकान में तो केवल एक ही समा सकता है। प्रेमी फिर वापस लौट गया। और फिर वर्षा आई और फिर धूप आई और फिर चांद उगे और गिरे। सूरज निकला और बुझा लेकिन प्रेमी फिर दुबारा नहीं आया। क्योंकि उसे खयाल ही भूल गया कि कहीं जाना है और तब प्रेयसी स्वयं ही उसके पास गई और उसने कहाः प्रिय, अब आओ द्वार खुल गए हैं! जैसे ही ‘मैं’ गिर जाता है वैसे ही ‘तू’ गिर जाता है और शेष रह जाता है, वही है--वही है। वह, जिसकी कि खोज है।
मैं और तू कि गिर जाने पर जो शेष है उसका नाम ही परमात्मा है। जहां मैं
और तू गिर जाते हैं, वहां जो शेष रह जाता है, वही है सनातन सत्ता, वही है अनादि अनंत अस्तित्व। वह जो एक सागर मात्र है चेतना का, उसका नाम ही परमात्मा है। उसे जाना जा सकता है। उसमें जीआ जा सकता है, उसमें हुआ जा सकता है। उसमें हम हैं, उसमें ही हम खड़े हैं, उसमें ही हम जी रहे हैं, लेकिन हमें उसका बोध नहीं, पता नहीं, स्मृति नहीं। क्योंकि हम तो अपने हम से ही भरे हैं और उसके आने योग्य अवकाश भी तो हमने नहीं छोड़ा है। मैं से हम इतने भरे हैं कि वह शून्य नहीं हो पाता है। मैं से शून्य होता है, वह उससे पूर्ण हो जाता है।
शून्य हो जाओ--मैं से शून्य हो जाओ। इसके लिए ही तीन सूत्र मैंने कहा। प्रेम में जो उतरता है, वह शून्य में ही उतरता है। प्रेम में सीढ़ी-सीढ़ी बढ़ो। प्रेम में बूंद-बूंद मिटो। और अंततः खो जाओ, वैसी ही जैसे बूंद सागर में खो जाती है। क्या आपको ज्ञात नहीं कि बूंद स्वयं को खोकर सागर हो जाती है?